नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

अनुराग
पुस्तकालय
एवं
वाचनालय

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 5 अंक 5
जून 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

संसदीय जनतंत्र के महातमाशे की तैयारियों ने जोर पकड़ा
विकल्प के नाम पर पालाबदल और जोड़-तोड़ की कवायदें

एक ही रास्ता–संसदीय जनतंत्र का नाश !
एक की विकल्प–सारी सत्ता मेहनतकशों को !

• सम्पादक

अगला लोकसभा चुनाव अब सिर्फ सवा साल दूर है। संसदीय जनतंत्र के इस पाँचसाला महातमाशे के लिए तैयारियाँ जोर पकड़ती जा रही हैं। पालाबदल शुरू हो चुके हैं। पार्टीगत निष्ठाएँ बदल रही हैं। दुश्मन दोस्त बन रहे हैं और दोस्त दुश्मन। चुनावी ठग-विद्या के तमाम उस्ताद, आँखों में धूल झोंकने वाले बाजीगर और छलिये अपना-अपना जाल बिछाने की तैयारी शुरू कर चुके हैं। और देश का मेहनतकश अवाम एक बार फिर विकल्पहीनता में पड़ा हुआ इस तमाशे में अपनी भूमिका के बारे में या तो उलझन में पड़ा हुआ है या 'को नृप होंहि, हमें का हानी' वाली मानसिकता में जी रहा है।

लगभग पन्द्रह महीने बाद होने वाले जनतंत्र के इस महातमाशे के पहले चार राज्यों (दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़) के विधानसभा चुनावों में इसका 'ग्रैण्ड रिहर्सल' होगा। इसके लिए मंच सज चुका है। इन चारों राज्यों में काँग्रेसी सरकारें है। काँग्रेस अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग दाँव खेलकर अपनी कुर्सी बचाने की जुगत में है। राजस्थान में अशोक गहलोत ने ग़रीब सवर्णों को आरक्षण देकर अपना वोट बढ़ाने का दाँव खेला है, मध्यप्रदेश में दिग्विजय सिंह दलित एजेण्डे को आजमा रहे हैं तो छत्तीसगढ़ में अजीत जोगी डोमिसाइल विवाद के सहारे आदिवासी वोटों को बटोरने की कोशिश में है। बी.जे.पी. नेतृत्व का यह आकलन बना है कि इन राज्यों की चुनावी नैया रामभरोसे नहीं पार लगायी जा सकती। इसलिए उसने इन राज्यों के लिए चुनावी घोषणापत्र में राममन्दिर को मुद्दा नहीं बनाने का फैसला किया है। उसने काँग्रेसी सरकारों की नाकामियों को मुद्दा बनाकर चुनाव जीतने की रणनीति बनायी है। भाजपा अध्यक्ष वेंकैया नायडू ने सुरक्षा, समृद्धि और विकास का नारा उछाला है। हालाँकि भाजपा ने मध्य प्रदेश में भोजशाला प्रंकरण को और राजस्थान में 'गोवंश रक्षा' मसले को उछालकर हिन्दू वोटों को अपने पक्ष में करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। लेकिन खुद काँग्रेस द्वारा नरम हिन्दुत्व की लाइन चलाने की रणनीति के चलते ये मसले जोर नहीं पकड़ सके। संसदीय जनतंत्र की वफादार सेवक बन चुकीं सी.पी.आई. और सी.पी. आई. (एम.) जैसी मजदूर वर्ग की गद्दार कम्युनिस्ट पार्टियाँ साम्प्रदायिकता के विरोध की जुगाली करते हुए इन राज्यों में काँग्रेस का पुछल्ला बने रहने की रणनीति से आगे जाने की कूवत नहीं रखतीं। संसदीय राजनीति के सभी पहलवान इन राज्यों के चुनावी दंगल पर नजरें गड़ाये हुए हैं क्योंकि इसके नतीजे आगामी महादंगल का समां बाँधने के नजरिये से बेहद अहम होंगे।

उधर केन्द्र की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन सरकार के घटक दलों के भीतर अपने-अपने चुनावी भविष्य को लेकर बेचैनियाँ बढ़ती जा रही हैं। जो दल राजग को डूबता हुआ जहाज मान रहे हैं वे छिटककर दूर भागना शुरू कर चुके हैं। रामविलास पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी के बाद अजीत सिंह के राष्ट्रीय लोकदल ने भी राजग से तलाक ले लिया है। अजीत सिंह अब उत्तर प्रदेश में काँग्रेस और सपा से चोंच लड़ा रहे हैं और मायावती की अगुवाई वाली बसपा-भाजपा सरकार को पलटने की मुहिम में जुटे हुए हैं। अजीत सिंह का चुनावी गणित यह है कि आगामी लोकसभा में कांग्रेस-सपा से गठजोड़ कायम कर चुनावी भवसागर पार किया जाये हालाँकि अजीत सिंह अपनी इस रणनीति के इर्दगिर्द अपनी ही पार्टी के सदस्यों को गोलबन्द करने और एकजुट रखने में पसीने-पसीने हुए जा रहे हैं। मायावती सरकार से समर्थन वापसी के बाद अपने विधायकों को छिटकने से बचाने के लिए अजीत सिंह ने उन्हें एक तरह से अपहरण कर कैद कर रखा है। भोपाल, श्रीनगर के बाद अब शिमला में वे कैद हैं।

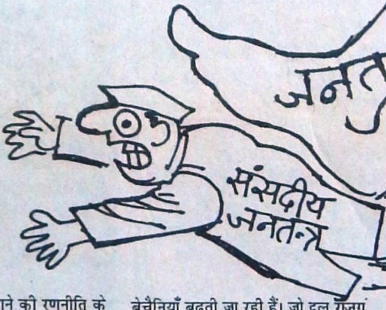

जो दल अभी राजग सरकार में बचे भी हुए हैं उनमें से कितने साथ रह पायेंगे यह चार राज्यों के विधानसभा चुनावों के नतीजों के बाद बिल्कुल साफ हो जायेगा। समता पार्टी, बीजू जनता दल, जनता दल (यू.) और तृणमूल काँग्रेस के भीतर राजग सरकार में बने रहने या न रहने के सवाल पर जो उठापटक मची हुई है उससे भविष्य में होने वाले पालाबदल के साफ संकेत मिल रहे हैं।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन के खिलाफ किसी भी तरह से चुनाव-जिताऊ गठजोड़ बना लेने की कवायदें भी तेज हो गयी है। तीसरे मोर्चे की फटी हुई धौंकनी से साम्प्रदायिक ताकतों के खिलाफ धर्मनिरपेक्ष ताकतों की एकता की आग लहकाने की कोशिशें फिर से चालू हो गयी हैं। इस तीसरे मोर्चे के लिए अभी सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यही बना हुआ है कि काँग्रेस के साथ या काँग्रेस के बिना। मजदूर क्रान्ति और समाजवाद का सपनों में भी नाम न लेने वाले सी.पी.आई.-सी.पी.आई. (एम.) के नेता संसदीय विपक्षी एकता के लिए जितने चिन्तित रहते हैं और जितनी निष्ठा के साथ एकता की दलाली करते हैं वह अब इतना घिनौना हो चुका है कि इन पार्टियों में बचे-खुचे ईमानदार कार्यकर्ताओं-शुभचिन्तकों तक को शर्म महसूस होने लगी है। साम्प्रदायिक फासीवाद के राक्षस का वध करने के लिए मेहनतकश अवाम को ललकारने के बजाय चुनावी गठजोड़ कायम करने की जिस कार्यनीति पर ये पार्टियाँ अमल कर रही हैं, उसके चलते इनके ईमानदार समर्थकों-शुभचिन्तकों में भय की भावना भी घर करती जा रही है। खुद अपने वैचारिक विभ्रमों के शिकार इन पार्टियों से हमदर्दी रखने वाले लेखक-बुद्धिजीवी यह भय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट भी कर रहे हैं।

पिछले छप्पन सालों से संसदीय जनतंत्र का यह घिनौना तमाशा देखते-देखते देश का मेहनतकश अवाम इतना ऊब और थक चुका है कि वह देश के चुनावी

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों की मार से अपनी रोजी-रोटी की हिफाजत के लिए देवू मोटर्स के मज़दूर आरपार के संघर्ष की राह पर

(बिगुल संवाददाता)

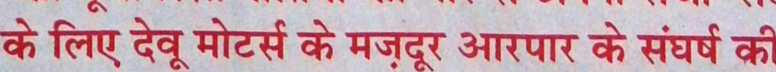

ग्रेटर नोएडा। भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में केन्द्र और राज्य सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों की लम्बे समय से मार झेल रहे देवू मोटर्स के मजदूर आर-पार की लड़ाई लड़ रहे हैं। अपनी रोजी-रोटी की हिफाजत के लिए भीषण गर्मी और लू के थपेड़ों से जूझते हुए लगभग डेढ़ हजार मजदूर विगत 20 मई से कम्पनी गेट पर रात-दिन के बेमियादी धरने पर बैठे हुए हैं। मजदूरों के आन्दोलन को आसपास की ग्रामीण आबादी का जबर्दस्त समर्थन प्राप्त है। पर तीन हफ्ते गुजर जाने के बाद भी शासन-प्रशासन के टालू रवैये को देखते हुए इस बात की पूरी आशंका बनी हुई है कि किसी भी समय यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन विस्फोटक रूप अख्तियार कर सकता है।

देवू मोटर्स को मजदूरों को आरपार की इस लड़ाई के रास्ते पर चलने के लिए उस समय मजबूर हो जाना पड़ा जब विगत 27 मई को भारी पुलिस पी.ए.सी. की सुरक्षा में बैंकरों ने अपने कर्जों को वसूली के लिए कम्पनी को अपने कब्जे में ले लिया। दरअसल, पिछले दो सालों से इस कोरियाई कम्पनी के डायरेक्टर मजदूरों की मनचाही छंटनी में नाकाम होने के बाद कम्पनी को बन्द करने की साजिशों में लगे हुए थे। लेकिन मजदूरों की एकजुटता के चलते अपनी इस चाल में भी नाकामी हाथ आने के कारण कम्पनी के छह डायरेक्टरों ने एक-एक करके कम्पनी छोड़कर भागना शुरू किया। विगत अप्रैल महीने में आखिरी बचा कोरियाई डायरेक्टर आई टेली कम्पनी को बैंकरों के हवाले कर स्वदेश चलता बना। इसी के बाद बैंकरों ने कम्पनी पर कब्जा कर लिया। यह सूचना मिलने के बाद 19 मई को कम्पनी के मजदूरों ने भी क्षेत्र के दस-बारह हजार किसानों के साथ मिलकर कम्पनी पर कब्जा कर लिया। इस कार्रवाई में मजदूरों-किसानों ने पुलिस पी.ए.सी. के साथ जमकर टक्कर ली। मजदूरों-किसानों को रोकने

(शेष पृष्ठ 6 पर)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

पूंजीवादी मरघट के दलालों की करतूत

पिछले दिनों यहां लोनी-इन्दिरापुरी कालोनी में महेन्द्र नामक 40 वर्षीय मजदूर ने अपने पत्नी-बच्चों समेत आत्महत्या कर ली। उसने कर्ज और लगातार काम की असुरक्षित परिस्थितियों के चलते हताश-निराश होकर यह कदम उठाया। वह निराश इस बात से था कि वह अपना दुख-दर्द किसी से बांट न सकता था।

भरे पेट वाले समाजशास्त्री, मनोचिकित्सक इस घटना की अपने तरह से व्याख्या कर रहे होंगे; मगर हमें अब यह सोचना होगा कि महेन्द्र का दुख उसके अकेले का दुख नहीं है। भले ही आज हमें यह लगता हो कि हम परास्त और अलग-थलग पड़ गये हैं पर यह सतही सच्चाई है। क्या यह सच नहीं है कि हमारे दुख-सुख साझा है? जब हम रोज-रोज फैक्ट्रियों में साथ खप-गल रहे हैं तो इस हालात से उबरने का रास्ता भी साथ-साथ ढूंढेंगे।

जब से उदारीकरण की नीतियां लागू हो रही है तब से तमाम रंगबिरंगे चुनावी मदारियों की ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व पर से मजदूरों का भरोसा उठता जा रहा है। उन्हें निराशा इस बात से है कि इन यूनियनों के नेतृत्व ने महज आर्थिक लड़ाइयों की कवायद करायी। वह लड़ने का मतलब आर्थिक लड़ाई ही समझ बैठा था। चुनावी वामपंथी पार्टियां व्यापक मजदूरों की मुक्ति के मिशन की चेतना नहीं दे सकी।

अब जबकि सरकार की श्रम विरोधी नीतियां उनकी आर्थिक लड़ाइयों का स्कोप भी खत्म करती जा रही हैं तो ऐसे में मजदूरों में निराशा और पस्तहिम्मती की भावना को दूर करने का सिर्फ एक ही उपाय है कि उन्हें फिर नये सिरे से उनकी व्यापक मुक्ति के रास्ते को बताया जाय। उन्हें यह बताया जाय कि जिन्हें अब तक तुम मुक्तिदाता मान बैठे थे, दरअसल वे पूंजीवादी मरघट के दलाल थे, जो तुम्हारी गफलत के चलते तुम्हारी यूनियनों में घुस आये थे। हमें अब नये सिरे से अपनी आजादी की लड़ाई की तैयारी करनी होगी। तभी हम अपने साथियों को इस मानवद्रोही सभ्यता के अलगाव, निराशा, पस्तहिम्मती से उबारकर इस लुटेरी व्यवस्था को खत्म कर सकते हैं।

घनश्याम
नोएडा

बिगुल—नए जोश, नए उत्साह का स्रोत

'बिगुल' के दो अंको की प्रतियाँ मुझे प्राप्त हुई जिसे पढ़कर मुझे एक नया जोश, नया उत्साह और जानकारी प्राप्त हुई। 'बिगुल' से जुड़े रहने से आप लोगों से जुड़े रहने का अहसास होता है। और मै यहाँ रहकर भी आप लोगों से जुड़ा हुआ हूँ। यहाँ के मजदूरों का वही हाल है जो अपने देश के मजदूरों का है। मारीशस में भारतीय और चीनी(लड़कियां, औरतें) मजदूर हजारों की संख्या में यहाँ के पूंजीपतियों के लिए अपना श्रम बेचने आए हैं। यहाँ एक सप्ताह का वर्क टाइम 45 घण्टे है और एक महीने की बेसिक सेलरी सिर्फ 27-28 सौ मारिशियन रुपये मिलता है। बहुत ज्यादा ओवरटाइम करके 5-6 हजार रुपये बनते है। भारत और यहाँ की स्थिति में कोई विशेष फर्क नहीं है। यहाँ महंगाई ज्यादा है। गारमेण्ट्स के अलावा किसी चीज का उत्पादन यहाँ नहीं होता। यह खाद्यान्न, मशीनरी और हर किस्म के बीज के लिए दूसरे देशों पर निर्भर है। यहाँ केवल गन्ना होता है। चीनी यहाँ सस्ती है। बाकी सारी चीजें मंहगी हैं।

यहाँ हर कोई काम करता है। यहाँ का जीवन खुला है। समाज में किसी के लिए कोई बन्धन नहीं है। यहाँ 60 प्रतिशत हिन्दू, 30 प्रतिशत में मुसलमान, अफ्रीकी मूल के लोग, ईसाई और फ्रेंच लोग हैं, और बाकी 10 प्रतिशत में अन्य समुदायों के लोग हैं। यहाँ की भाषा फ्रेंच की उपभाषा क्रियोल है। हिन्दी, भोजपुरी भी बोली जाती है। लोग शान्तिप्रिय और उदार है।

'बिगुल' से मई दिवस के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। यहाँ पहली मई को सार्वजनिक अवकाश रहता है। और यहाँ की सरकार एवं लोग मई दिवस की परम्परा को रस्मी तौर पर मनाते हैं। मुझे कोई ऐसा संगठन नहीं मिला जो सही मायने में मजदूरों का संगठन हो। भाषा की समस्या है। मैं यहाँ साथियों की तलाश में हूँ। कृपया मुझे 'बिगुल' नियमित तौर पर भेजा करें।

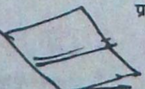

प्रमोद कुमार
फ्लोरियाल,
मारीशस

फिर भी नेता जी कहते हैं

कौन नहीं जानता, नेता हरामखोर हैं
नेता कामचोर हैं
नेता मुँहजोर हैं, फिर भी हम नेताज़ी
कहते हैं।
नेता धोखेबाज हैं
नेता आश्वासनबाज हैं, नेता धन्धेबाज हैं
फिर भी हम नेताजी कहते हैं
नेता लुटेरा है, नेता सपेरा है
नेता अपनी ही बीन पर जनता को
नचाता है
गीत अपने ही गाता है।
फिर ही हम नेताजी कहते हैं।
नेता बाहर भाषणबाज है
अपने घर में राशनबाज है।
क्लबों में शाहनवाज है
फिर भी हम नेताजी कहते हैं।
जनता का निकल रहा जनाजा
नेता बजा रहे हैं बाजा
फिर भी हम नेताजी कहते हैं।

रामवृक्ष वर्मा
शाहबाद डेरी, दिल्ली

सन्देश

हल्की-हल्की फुहार लाया हूँ, आसमाँ
से उतार लाया हूँ
मज़दूर दिवस पर दीर्घायु की पुकार लायां हूँ।
निश्चय समझो जो कभी बाधक थी
धन की नियत जिनकी आराधक थी
वह देख एकतातेज तुम्हारा स्वयं
साधक होगी
तुम अपने आदर्शों का आराधक बनो
ये पूंजीपति तुम्हारे आगे झुक जायेंगे
सिर के बल दौड़े-दौड़े आयेंगे।
देख तुम्हारी एकता साधक बन जायेंगे
एकता के आगे हर बड़ी ताकत झुक
जाती है
एकता के दम को पहचान जाती है।
शोषण का बाजार गर्म है
ये शोषण करने वाले पूंजी पर मरते हैं
पूंजी ही इनका प्राण, पूंजी ही धर्म है
अन्दर काली क्रूरता, ऊपर गोरा चर्म है
मज़दूरों को बनाए गुलाम
ये इनका भ्रम है।
जिस मज़दूर का खून न खौलां
खून नहीं वह पानी है
निश्चय वह कमजोर है ये मान लो
कोई शक नहीं है
भ्रम इनका दूर करने मज़दूरे-बाजुए-दम
तलवार लाया हूँ
हल्की-हल्की फुहार लाया हूँ, आसमाँ
से उतार लाया हूँ।
बड़ी मुश्किल से निकाल कांटो से गुलाब
लाया हूं
दिल में रखकर मज़दूर दिवस त्योहार
लाया हूँ।

निर्दोष जॉन
आनन्द निशिकावा लि.,
रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)

कब तक इन जानलेवा सवालों से आँखें बन्द किये बैठे रहेंगे हम

'बिगुल' का अंक मिलता है तो बड़ी प्रसन्नता होती हे, खासकर कुछेक ऐसे प्रसंग होते है जो धमनियों को गरमाने का काम करते है। मार्क्स और राहुलजी के संदर्भ में जो आलेख है, वे सचमुच क्षण भर के लिए सोचने पर मजबूर करते हैं कि आम अवाम के लिए आज हम क्या कर रहे हैं? महानगरों के फुटपाथ, रेलवे स्टेशन के इर्द-गिर्द पड़े भूखे-नंगे बच्चों और कल-कारखानों के कामगार और उनके बच्चों का भविष्य (और वर्तमान भी) कालिख-सना नहीं लगता? आजादी का जश्न मनाते समय मुल्क के रहनुमाओं की उद्घोषणायें प्रपंच मालूम पड़ती हैं। हम पांच दशकों के बाद भी ऐसे जानलेवा सवालों से आँखें बन्द किये बैठे हैं। हत्या, चोरी अपराध, लूट, बलात्कार की उर्वर जमीन सिर्फ बिहार नहीं है। अब तो कोई ऐसा प्रांत नहीं बचा जहाँ यह संक्रामक रोग न हो। ऐसे में हम बुद्धिजीवियों की भूमिका कारगर नहीं हुई तो भ्रष्ट शासकों का कारोबार फूलता-फलता रहेगा।

जितेन्द्र रांठौर
पटना

रिक्शा-ठेला चलाने वाले भाइयो, सुनो!

दिल्ली सरकार दिल्ली में रिक्शा-ठेला चलाना बन्द करवाना चाहती है। उसं इस बात की कोई फिक्र नहीं हैं कि इससे हजारों परिवार भुखमरी के शिकार हो जायेंगे। दिल्ली से रिक्शों को निकाल बाहर करने का मतलब है लाल किले को खण्डहर में बदल वजीराबाद किले जैसा बना देना क्योंकि इसके साथ केवल रिक्शेवालों की जिन्दगी ही नहीं, हजारों छोटे दुकानदारों की जिन्दगी भी जुड़ी हुई है। हजारों की तादाद में गरीब आबादी अपनी गृहस्थी के सामानों से लेकर अपने काम-धन्धों के सामानों को भी रिक्शा-ठेला की मदद से ही ढोती है। दिल्ली के सभी रिक्शा-ठेला चलाने वाले भाई ध्यान से सुन लें कि अगर वे एकजुट होकर अपने हक की आवाज हुकूमत के कानों तक नहीं पहुँचायेगें तो उनका बचना मुश्किल है। अगंर हम नहीं लड़ेंगे तो बेमौत मारे जायेंगे।

सरवर अली
चौड़ा, सेक्टर 22, नोएडा

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

'बिगुल'

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उप कार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेन्ट, मयूर विहार, फेज-1 दिल्ली-91,

मूल्य - एक प्रति -रु. 3/-
वार्षिक - रु. 40.00 (डाक व्यय सहित)

'बिगुल'
'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5:00 से 8:00 बजे तक)
3. जाफ़रा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

• कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन	5/-
• मकड़ा और मक्खी- विल्हेल्म लीब्कनेख्त	3/-
• ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके-सर्जी रोस्तोवस्की	3/-
• अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं	10/-
• समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	12/-
• क्यों माओवाद?	10/-
• मई दिवस का इतिहास	5/-
• अक्टूबर क्रान्ति की मशाल	12/-
• पेरिस कम्यून की अमर कहानी	10/-
• बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में	5/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 17 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजे :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ

शाही एक्सपोर्ट समूह के मजदूरों के भीतर सुलगता आक्रोश किसी समय फूट सकता है

(बिगुल प्रतिनिधि)

नोएडा (गौतमबुद्ध नगर)। अपने वाजिब हक के लिए लड़ी गयी किसी लड़ाई में जब मजदूरों को हार का सामना करना पड़ता है तो मालिकान अपना शिकंजा पहले से भी अधिक कस लेते हैं। शाही एक्सपोर्ट समूह की इकाइयों में इन दिनों यही हाल है। नेतृत्व के विश्वासघात के चलते लगभग बीस महीने पहले चले आन्दोलन में इस कम्पनी के मजदूरों को हार का सामना करना पड़ा था। नतीजतन मालिकान के हौसले बढ़े हुए हैं और पहले से जारी शोषण-उत्पीड़न और तेज हो गया है। मालिकान-मैनेजमेण्ट के इस जालिमाना रवैये के खिलाफ कम्पनी के मजदूरों में जबर्दस्त गुस्सा भरा हुआ है। किसी सच्चे जुझारू नेतृत्व के अभाव में मजदूर फिलहाल चुप बैठे हैं। लेकिन आक्रोश भीतर ही भीतर इतना खदबदा रहा है कि किसी भी समय यह फूट सकता है।

विदेशों में निर्यात के लिए तरह-तरह के सिले-सिलाए कपड़े बनाने वाले शाही एक्सपोर्ट समूह की कुल 9 कम्पनियां चल रही हैं जिनमें कुल मिलाकर पांच हजार से अधिक परमानेण्ट मजदूर काम करते हैं। इसके अलावा काफी काम ठेका एवं कैजुअल मजदूरों से भी कराया जाता है। ये कम्पनियां नोएडा, दिल्ली, फरीदाबाद और मोहननगर (गाजियाबाद) में हैं। नोएडा स्थित तीन कम्पनियां है फेज एक में ई-10, सेक्टर-11, फेज दो में ए-5 और एन.ई.पी.जेड; (नोएडा एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन) स्थित गारमेक्स। इनमें क्रमशः लगभग 900, 800 और 250 परमानेण्ट मजदूर हैं। सितम्बर 2001 में चले आन्दोलन के दौरान इन तीनों कम्पनियों के मजदूरों ने मिलकर एक संयुक्त संघर्ष समिति भी बनायी थी लेकिन कुछ दलाल नेताओं ने इस एकता को आगे बढ़ने और ताकतवर बनने ही नहीं दिया। ई-10, सेक्टर-11 में मजदूरों की एक यूनियन बनाने की भी कोशिश हुई थी लेकिन बताते हैं कि अगुवा लोगों की जेबें गरम हो जाने के बाद यह मामला ठंडा पड़ गया। पिछले आन्दोलन के दौरान मजदूरों के ऊपर जालिम मालिकान ने एक कैंटर ट्रक दौड़ा दिया था जिसमें 25 मजदूर बुरी तरह घायल हो गये थे और गारमेक्स के एक जुझारू मजदूर उपेन्द्र की अस्पताल में मौत हो गयी थी।

शाही एक्सपोर्ट समूह की मोहननगर (गाजियाबाद) स्थित पालम प्रिण्ट टेक्सटाइल्स नामक कम्पनी में लगभग 1800 परमानेण्ट मजदूर काम करते हैं। फरीदाबाद की कम्पनी सेक्टर-28 (आई.पी.-I) में है और इसमें लगभग 1200 मजदूर हैं। दिल्ली के रंजीतनगर इलाके में स्थित तीन इकाइयों में भी कुल मिलाकर लगभग 2000 मजदूर काम कर रहे हैं। दिल्ली के ही ओखला क्षेत्र में इसका मुख्यालय और फैब्रिक स्टोर है जिसमें लगभग 100 मजदूर कर्मचारी कार्यरत हैं। बंगलोर स्थित वालमार्ट नामक कम्पनी इसकी बायर कम्पनी (विदेशों में निर्यात के लिए थोक माल खरीदने वाली कम्पनी) है।

शोषण-उत्पीड़न के एक से बढ़कर एक हथकण्डे

शाही एक्सपोर्ट समूह के मालिकान मजदूरों को मुनाफा पैदा करने वाली मशीनों के कलपुर्जों से अधिक नहीं समझते। इसलिए मैनेजमेण्ट मजदूरों से जानवरों की तरह काम लेता है। गाली-गलौज और बात-बात पर काम से निकालने की धमकी देना रोजमर्रे की बात है। मजदूर की कोई गलती हो या न हो कम्पनी इस बात के लिए आजाद है कि जब चाहे किसी मजदूर को निकाल बाहर करे। नोएडा सेक्टर-11 स्थित ई-10 के कई मजदूरों से 'बिगुल' प्रतिनिधि को यह जानकारी मिली कि छोटी से गलती के लिए मजदूरों को एक हफ्ते का गेट पास देकर बैठा दिया जाता है या सीधे निकाल बाहर किया जाता है। एक मिनट लेट होने पर भी हाफ डे लगा दिया जाता है या गेट पर बैठा दिया जाता है। लेकिन अगर अपनी जरूरत से कम्पनी किसी मजदूर को एक घण्टा उन्सठ मिनट रोक ले तो कोई ओवरटाइम नहीं दिया जाता। पिछले आन्दोलन के पहले एक घण्टे का लंच होता था जिसे घटाकर अब आधा घण्टा कर दिया गया है।सुबह 9.30 बजे से लेकर शाम 6.00 बजे तक मजदूरों से काम लिया जाता है। इस तरह मजदूरों से एक घण्टा फालतू बेगार कराया जा रहा है। कैण्टीन में मजदूरों को मिलने वाली चाय भी बन्द कर दी गयी है। पहले रात में ओवरटाइम करने पर खाने के लिए .15 रुपये मिलते थे। अब इसे भी बन्द कर दिया गया है। फिलहाल कैण्टीन ठेके पर चल रही है जिसमें बेहद घटिया खाना मिलता है। इसके कारण आये दिन मजदूर बीमार पड़ते रहते हैं। मजदूरों को पेशाब करने के लिए टोकन सिस्टम लागू कर दिया गया है। प्यास लगने पर लंच के अलावा कोई मजदूर पानी भी पीने नहीं जा सकता।

साप्ताहिक छुट्टियों के अलावा साल में कुल सिर्फ 21 छुट्टियां मिलती हैं। सिर्फ एक दिन की आर.एच. (प्रतिबंधित छुट्टी) मजदूर ले सकता है। अगर किसी इमर्जेंसी में या घर जाने के लिए छुट्टी के लिए कोई मजदूर दरखास्त देता है तो मैनेजमेण्ट जल्दी स्वीकार नहीं करता और अगर करता भी है तो मांगी गयी छुट्टी के दिनों में मनमानी कटौती करके स्वीकार करता है। तबियत खराब हो जाने पर भी जल्दी छुट्टी नहीं मिलती और न ही कम्पनी के भीतर इलाज का कोई इन्तजाम है। छुट्टी खत्म होने के बाद एकाध दिन लेट आने पर इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि वापस काम पर मजदूर रख लिया जायेगा।

मजदूरों को ई.एस.आई.कार्ड मिला हुआ है लेकिन अस्पताल में इसका कोई मोल नहीं है। अस्पताल में लम्बी लाइन से गुजरने के बाद नम्बर आने पर डॉक्टर चलताऊ ढंग से निपटा देते है। दवाएं भी ठीक से उपलब्ध नहीं। गंभीर बीमारियों में ई.एस.आई. अस्पताल में भर्ती होने के लिए नाको चने चबाने पड़ते हैं। पी.एफ. दफ्तर का हाल तो और भी बुरा है। किसी जरूरत के समय अगर एडवांस लेना पड़ जाये तो बिना पांच परसेंट कमीशन दिये मिल ही नहीं सकता।

मजदूरों की कमाई हड़पने के हथकंडे

कम्पनी का मैनेजमेण्ट हमेशा इस फिराक में रहता है कि मजदूरों के खून-पसीने की कमाई को किस तरह हड़प लिया जाये। तनख्वाह कभी बारह तारीख के पहले नहीं मिलती। ओवरटाइम की मजदूरीं भी पूरे रेट से नहीं मिलती। इन्क्रीमेण्ट लगाने की कोई पालिसी नहीं है। मैनेजमेण्ट मनमाने ढंग से अपने चहेतों को ज्यादा इन्क्रीमेण्ट देता है और किसी-किसी का इन्क्रीमेण्ट तरह-तरह का बहाना बनाकर रोक लिया जाता है। मजदूरों के डी.ए. का एक हिस्सा हड़पने के लिए मैनेजमेण्ट हर साल जालसाजी करता है। साल में दो बार सितम्बर और फरवरी महीने में सरकार द्वारा डी.ए. (महंगाई भत्ता) दिया जाता है। लेकिन कम्पनी मैनेजमेण्ट फरवरी माह का डी.ए. यह कहकर रोक लेता है कि अप्रैल माह में एग्रीमेण्ट के समय इसे जोड़कर दे दिया जायेगा। अप्रैल माह में एग्रीमेण्ट के बाद जब मजदूरों को 10, 20, 50 रुपये बढ़ाकर मिलता है तो मजदूर समझता है कि उसका इन्क्रीमेण्ट लगा है। डी.ए. और इन्क्रीमेण्ट के इस घालमेल से कम्पनी को हर साल हजारों रुपये बिना हर्रे-फिटकरी लगे मिल जाते हैं।

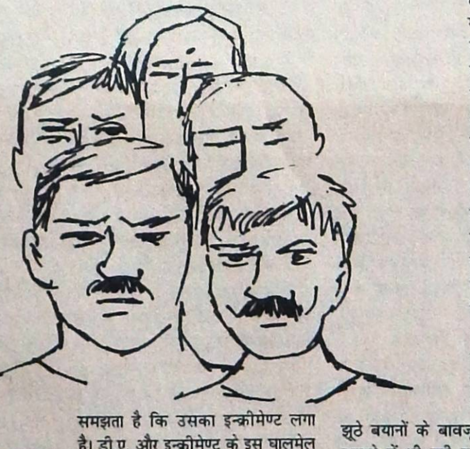

बायर को खुश करने की तिकड़में

कम्पनी में निरीक्षण के लिए जब कभी बायर आता है तो उसे खुश करने के लिए मैनेजमेण्ट तरह-तरह की तिकड़में रचता है। बायर के मांगने पर तरह-तरह की फर्जी फाइलें, फर्जी कन्फर्मेशन लेटर और मेडिकल सर्टिफिकेट आदि कागजात दिखा दिये जाते हैं। इन कागजात के बारे में वर्करों को कोई जानकारी नहीं होती। बायर के आने की सूचना पहले से ही मजदूरों को दे दी जाती है और सबको यह झूठ बोलने के लिए कहा जाता है कि ओवरटाइम नहीं लगता है। ऐसा नहीं कहने पर काम से निकाल बाहर करने की धमकी दी जाती है।

मैनेजमेण्ट की गुण्डागर्दी

मजदूरों से अपनी बात जबरिया मनवाने के लिए मैनेजमेण्ट सरासर गुण्डागर्दी पर भी आमादा हो जाता है। बीते बीस जनवरी को मैनेजमेण्ट ने कार्मिक प्रबन्धक (पर्सनल मैनेजर) सहित कुल 9 कर्मचारियों को झूठे आरोप लगाकर निकाल बाहर किया। इनमें से 5 लोगों को कुछ दिन बाद अन्दर ले लिया गया। पर्सनल मैनेजर सहित बाकी 4 कर्मचारियों को 30 जनवरी को हेड ऑफिस बुलाया गया और सुबह 10 बजे से शाम सात बजे तक इन्हें जबरिया रोककर डरा-धमकाकर इस्तीफा लिखने के लिए कहा जाता रहा। इस समूची गुण्डागर्दी के लिए कम्पनी की मालकिन सरला आहूजा की हरी झण्डी थी। एक नया मैनेजर (मानव संसाधन मैनेजर) विनोद कपूर इस गुण्डागर्दी की अगुवाई कर रहा था। राजेन्द्र आहूजा और दो अन्य कर्मचारियों ने मजबूरी में अपने इस्तीफे लिखकर दे दिये पर एक कर्मचारी मुन्ना कुमार राय किसी तरह वहां से बिना इस्तीफा लिखे निकलने में कामयाब हो गया। उसने बाहर निकलने के बाद संबंधित थाने में एफ.आई.आर. दर्ज कराया और डी.एल.सी. के दफ्तर में शिकायत लिखकर दी जिसकी सुनवाई चल रही है। इस मामले में मैनेजमेण्ट बुरी तरह उलझ गया है।

इसी तरह एक महिला मजदूर नीतू सिंह के मामले में भी मैनेजमेण्ट बुरी तरह उलझ गया है। इस मजदूर को मैनेजमेण्ट ने छुट्टी से वापस लौटने पर काम पर वापस लेने से अकारण मना कर दिया था। कम्पनी (ई-10) के भीतर जाने से रोकने के लिए गेटमैनों ने दुर्व्यवहार तक किया। इसकी शिकायत उसने थाने, डी.एल.सी. सहित राष्ट्रीय महिला आयोग में कर दी। तमाम झूठे बयानों के बावजूद मैनेजमेण्ट इस मामले में भी बुरी तरह फंस गया है। मैनेजमेण्ट ने कुछ पैसों का लालच देकर नीतू सिंह से केस वापस लेने के लिए कहा, पर यह जागरुक मजदूर मैनेजमेण्ट को उचित सजा दिलाये बिना और अपना हक लिये बिना झुकने के लिए तैयार नहीं है।

चुप्पी एक दिन जरूर टूटेगी

शाही एक्सपोर्ट समूह के मालिकान मैनेजमेण्ट के जालिमाना रवैयों और शोषण-उत्पीड़न के इन तमाम कारनामों के खिलाफ समूह की सभी कम्पनियों के मजदूरों का आक्रोश अन्दर ही अन्दर सुलग रहा है, जो किसी भी समय भड़क सकता है। ऐसा हो ही नहीं सकता कि मजदूर बेजुबान जानवरों की तरह चुपचाप सब कुछ सहन करते हुए मालिकान की तिजोरियां भरते रहें। आज छायी चुप्पी कल जरूर टूटेगी। आज अगर किसी चीज की कमी है तो यह कि उनका अभी कोई संगठन नहीं बन पाया है और कोई ईमानदार क्रान्तिकारी नेतृत्व उन्हें नहीं दीख रहा है।

अपने बीच से क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करना होगा

शाही एक्सपोर्ट के मजदूर साथी खुद यह महसूस करते जा रहे हैं कि बिना लड़े अब काम नहीं चलने वाला। अनेक मजदूरों ने इस प्रतिनिधि को बताया कि वे संगठित होना चाहते हैं लेकिन कोई रहनुमाई करने वाला नहीं है। 'शाही' के साथियों को पिछले संघर्ष के अनुभवों से सीखते हुए नये सिरे से संगठित होने की शुरुआत करनी होगी। पिछले संघर्ष का सबसे पहला सबक तो यही है कि उन्हें किसी चुनावी पार्टी की दलाल ट्रेड यूनियन या उसके किसी धन्धेबाज नेता के झांसे में कभी नहीं आना होगा। किसी मसीहा का इन्तजार करने के बजाय बहादुर, ईमानदार, कर्मठ साथियों को आगे आना होगा और सूझ-बूझ वाला नया नेतृत्व पैदा करना होगा। 'बिगुल' अखबार और उसके कार्यकर्ता मार्गदर्शन के लिए हमेशा साथ हैं। पिछले संघर्ष के दौरान भी हमने धन्धेबाज नेताओं से पिण्ड छुड़ाने के लिए आगाह किया था और व्यापक एकजुटता का आह्वान किया था।

पिछले संघर्ष का दूसरा कीमती सबक यह है कि शाही समूह की सभी कम्पनियों के मजदूरों के बीच व्यापक एका कायम करने की कोशिश करनी होगी। किसी एक यूनिट की लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती।

मजदूर साथियों को यह भी कभी न भूलना होगा कि उनकी कम्पनी अकेली नहीं है जिसका यह हाल है। नोएडा की अधिकांश कम्पनियों और देश के समूचे औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूर मालिकान के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के शिकार हैं। इसका कारण यह है कि मुनाफे और बाजार पर आधारित देश की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था ही मजदूरों की लूट पर टिकी है और देश की राजनीतिक व्यवस्था इस लूट की व्यवस्था की चौकीदारी करती है। सभी सरकारें, चुनावी राजनीति करने वाली तमाम पार्टियां देशी-विदेशी पूंजीपतियों के मुनाफे की रखवाली कुत्तों से भी अधिक वफादारी के साथ करती हैं। देश में पूंजीपतियों की यह लूट पिछले दस-बारह सालों में और खुली हो गयी है। सरकारें कानून बनाकर पूंजीपतियों के हाथ खुले कर रही हैं। ऐसे में मजदूरों की लड़ाई जब तक देशव्यापी शक्ल नहीं लेगी तब तक पूंजी की इस गुलामी से फैसलाकुन आजादी नहीं मिलेगी। मजदूर साथियों को इस लम्बी लड़ाई के बारे में भी सोचना ही होगा।

लेकिन किसी भी लम्बी लड़ाई की शुरुआत छोटी-छोटी लड़ाइयों से ही होगी। देशव्यापी एकता कायम करने के पहले अपनी-अपनी जगहों पर मजदूरों को मजबूत एकता कायम करनी होगी। शाही एक्सपोर्ट के साथियों ने कई बार साबित किया है कि वे लड़ सकते हैं। पिछली लड़ाइयों का अनुभव भी उनके साथ है। इसलिए उम्मीद है कि वे एक बार फिर उठ खड़े होंगे। इस बार ज्यादा मजबूती और ज्यादा सूझबूझ के साथ। साथी उपेन्द्र का खून कभी बेकार नहीं जायेगा। संघर्ष के दौरान बहा खून कभी धरती में जज्ब नहीं होता।

हिन्दुस्तान लीवर, कोलकाता में तालाबंदी

500 मजदूरों की छंटनी पर आमादा मैनेजमेण्ट के खिलाफ संघर्षरत मजदूरों के साथ एकजुटता के लिए आगे आओ!

(बिगुल प्रतिनिधि)

भारत की दो-तीन सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में से एक हिन्दुस्तान लीवर के गार्डन रीच, कोलकाता स्थित कारखाने के 1500 मजदूर पिछले तीन महीने से अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। तीन वर्ष से लम्बित मजदूरों की माँगों पर कुछ करने के बजाय मैनेजमेण्ट 500 स्थायी मजदूरों को वी.आर.एस. देकर निकालने और 150 ठेका मजदूरों को हटाने पर अड़ा हुआ है। साथ ही वह गार्डन रीच फैक्ट्री में कई विभागों को बंद करके उनका उत्पादन पिछड़े इलाकों की छोटी-छोटी इकाइयों में शिफ्ट करना चाहता है ताकि वहाँ सरकार से तमाम तरह की रियायतों का फायदा उठाया जाये और असंगठित मजदूरों से मनमानी मजदूरी पर काम लिया जा सके।

पिछले 22 मार्च को फैक्ट्री में गैरकानूनी तालाबंदी कर दी गई। मजदूरों का घरना फैक्ट्री गेट पर जारी है और मैनेजमेण्ट तमाम हथकंडे अपनाकर उनके आंदोलन को तोड़ने और कुचलने की कोशिश में लगा हुआ है।

हिन्दुस्तान लीवर एक ऐसी कम्पनी है जिसका बनाया कोई न कोई सामान आपको हर औसत भारतीय घर में मिल जायेगा–लक्स, लिरिल और लाइफब्वॉय जैसे साबुन; क्लोजअप और पेप्सोडेंट जैसे टूथपेस्ट; रिन, व्हील, सर्फ और सनलाइट जैसे डिटर्जेंट; लिप्टन और ब्रुकबाण्ड जैसी चाय से लेकर नमक, आटा, ब्रेड, आइसक्रीम और सैकड़ों दूसरी चीजें यह बनाती और बेचती है। यह दरअसल ब्रिटिश कम्पनी यूनीलीवर की भारतीय कम्पनी है। इसका लूट का कारोबार अंग्रेजों के राज से ही चल रहा है। आजादी के बाद भारत में इसका नाम बदलकर हिन्दुस्तान लीवर कर दिया गया। इसने तमाम तरह की तिकड़मों और जाल-फरेब करके भारत में अपना कारोबार भारी पैमाने पर फैलाया है, लेकिन इसकी काली कहानी फिर कभी।

भारत में उदारीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद से तो इस कम्पनी के मुनाफे में जबर्दस्त बढ़ोत्तरी हो रही है। 1993 में इसका कुल मुनाफा 127.27 करोड़ रुपये था जो 2002 में करीब 15 गुना बढ़कर 1754 करोड़ रुपये हो चुका है। लेकिन इस भारी मुनाफे की बंदरबांट कम्पनी के आला अफसरों और बैठे-ठाले कमाई करने वाले शेयरधारकों के बीच ही हो जाती है। सैकड़ों करोड़ रुपये यूनीलीवर कम्पनी के मुनाफे के रूप में देश से बाहर चले जाते हैं। दूसरी ओर जीतोड़ मेहनत से मुनाफा पैदा करने वाले मजदूरों की माँगों को कूड़े की टोकरी में फेंककर उल्टा उनके सिर पर छंटनी की तलवार लटका दी गई।

भारत सरकार ने तीन वर्ष पहले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के लिए घोषित वेतन नीति में कहा था कि सबसे ऊंचे मैनेजर और सबसे कम वेतन पाने वाले मजदूर के बीच का अंतर दस गुना से ज्यादा नहीं होना चाहिए। हिन्दुस्तान लीवर के चेयरमैन के वेतन को तो भूल ही जाइये। वह इतना अधिक है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। केवल गार्डन रीच फैक्ट्री में वेतन के अंतर को देखिये तो पता चलता है कि कुल वेतन का 49 प्रतिशत सिर्फ 56 मैनेजरों और अफसरों को चला जाता है। बाकी 51 प्रतिशत में 1100 स्थायी मजदूरों को निपटा दिया जाता है। पश्चिम बंगाल के सबसे पिछड़े उद्योगों में से एक, जूट उद्योग के मजदूरों से भी कम महंगाई भत्ता यहाँ मिलता है।

वेतन वृद्धि तथा दूसरी माँगों पर **हिन्दुस्तान लीवर श्रमिक कर्मचारी कांग्रेस** का माँगपत्र जनवरी 2001 से ही लम्बित है क्योंकि मैनेजमेण्ट इस बात पर अड़ा है कि जब तक 500 मजदूर वी.आर.एस. लेकर कंपनी से अपना हिसाब नहीं कर लेंगे और कुछ महत्वपूर्ण विभागों को बंद नहीं किया जायेगा तब तक वह कोई समझौता नहीं करेगा। सीधी-सी बात है कि मैनेजमेण्ट अपने बड़े कारखानों से उत्पादन हटाकर पिछड़े इलाकों की छोटी-छोटी इकाइयों में ले जाना चाहता है। उदारीकरण के दौर में सभी बड़ी कम्पनियाँ ऐसा करने की फिराक में हैं। पिछले दिनों रुद्रपुर की होंडा पावर प्रोडक्ट्स फैक्ट्री में भी यही देखने को आया।

मैनेजमेण्ट अखबारों में बड़े-बड़े विज्ञापन देकर प्रचार कर रहा है कि मजदूर खूब मोटी तनख्वाह पा रहे हैं लेकिन काम पहले से कम करते हैं। हकीकत यह है कि कम्पनी खुद ही सोची-समझी योजना के तहत उत्पादन लगातार घटा रही है। 1998 में 95,000 टन के सालाना उत्पादन को धीरे-धीरे कम करके 2002 में 42,000 टन तक ले आई है। तो क्या बाजार में हिन्दुस्तान लीवर का हिस्सा कम हो रहा है? अगर ऐसा है तो यह बेहिसाब मुनाफा कहाँ से पैदा हो रहा है? दरअसल, पिछले कई सालों से कम्पनी छोटी-छोटी इकाइयों में अपना उत्पादन करवा रही है जिनमें कैजुअल और ठेके के मजदूरों से काम कराया जाता है। इसीलिए मैनेजमेण्ट ने उत्पादन बढ़ाने के यूनियन के प्रस्ताव को भी रद्दी में फेंक दिया क्योंकि इससे इसके झूठ की पोल खुल जाती।

मजदूरों के प्रतिरोध को तोड़ने के लिए कम्पनी ने उन्हें परेशान करने के तरह-तरह के हथकंडे अपनाये। कभी गैरकानूनी ढंग से तनख्वाहों में कटौती, कभी चार्जशीट देना, मनमाने ढंग से तबादला कर देना, कारण बताओ नोटिस जैसे तरीकों से उन्हें त्रस्त किया जाता रहा। मजदूरों को खाली बैठाये रखा जाता था जबकि काम बाहर से ठेके पर कराया जाता था। ठेका मजदूरों की हड़ताल के दौरान जब स्थायी मजदूरों ने उनका काम करने से इनकार कर दिया तो चुन-चुनकर मजदूरों को परेशान करने का सिलसिला और तेज हो गया। मैनेजमेण्ट की नीतियों के खिलाफ सभी मजदूर मार्च में तीन दिन की हड़ताल पर चले गये। लेकिन इसी बीच 21 मार्च की आधी रात को मैनेजमेण्ट ने तालाबंदी की घोषणा कर दी। तालाबंदी खत्म करने के लिए मैनेजमेण्ट तीन शर्तों पर अड़ा हुआ है–

i) 500 मजदूरों को कम करना;

ii) जब भी ठेका मजदूर आन्दोलन करें तो स्थायी मजदूरों को उनका काम भी करना पड़ेगा;

iii) 150 ठेका मजदूरों को काम से हटाना।

कहने की जरूरत नहीं कि इन मजदूर विरोधी शर्तों को मानने के बजाय मजदूर कमर कसकर लड़ाई के लिए डटे हुए हैं। गार्डन रीच शिपबिल्डर्स एंड इंजीनियर्स, सेंट्रल इनेलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन, पहाड़पुर कूलिंग टावर्स, हिन्दुस्तान मोटर्स, हिन्दुस्तान डेवलपमेंट कारपोरेशन, भारत बैटरी, कलकत्ता जूट मिल, शूरा जूट मिल आदि के संघर्षशील मजदूरों ने भी इस आंदोलन के प्रति एकजुटता जाहिर करते हुए संघर्ष को समर्थन दिया है। गार्डन रीच इलाके की आम मेहनतकश आबादी भी मजदूरों का साथ दे रही है। यूनियन पश्चिम बंगाल सरकार को ज्ञापन देने के लिए एक लाख लोगों के दस्तखत इकट्ठा कर रही है।

दूसरी ओर पश्चिम बंगाल सरकार हिन्दुस्तान लीवर मैनेजमेण्ट की तमाम कारगुजारियों से आंख मूँदकर बैठी है, और परदे के पीछे से मैनेजमेण्ट की पीठ ही थपथपा रही है। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है। बुद्धदेव भट्टाचार्य की सरकार जिस तरह से देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा में बिछी जा रही है, ऐसे में उससे कुछ और उम्मीद करना बेवकूफी ही होगी। लाल झंडा उड़ाते हुए मजदूरों को ठगने वाले ये रंगे सियार अब तो इतने बेशर्म हो चुके हैं कि पूँजीपतियों की सभाओं में जा-जाकर उन्हें आश्वासन दिया जा रहा है कि पश्चिम बंगाल में उन्हें श्रमिक "असंतोष" का सामना नहीं करना पड़ेगा।

लीवर के मजदूरों को सिर्फ मेहनतकश वर्ग की मजबूत और व्यापक एकता के बूते पर यह लड़ाई लड़नी है। उन्हें यह ध्यान में रखना होगा कि भूमण्डलीकरण-उदारीकरण के दौर में सरकारें, अदालतें, पूँजीवादी मीडिया सब पूँजीपतियों के हितों की रक्षा में एक हो गये हैं। मजदूरों को कुचलने की बात आते ही सारे पूँजीपति भी आपसी झगड़े रोककर फौरन एक हो जाते हैं। ऐसे में एक-एक कारखाने में लड़े जा रहे संघर्षों के सामने कठिनाइयाँ बहुत अधिक बढ़ गई हैं। लीवर के मजदूर साथियों को होण्डा तथा दूसरे कारखानों में चले लम्बे आंदोलनों के अनुभवों पर भी सोच-विचार करते हुए अपने संघर्ष को व्यापक बनाने के प्रयास तेज कर देने चाहिए।

हिन्दुस्तान लीवर श्रमिक कर्मचारी कांग्रेस की अपील

I) तालाबंदी फौरन खत्म करने और छंटनी का फैसला वापस लेने के लिए कम्पनी के चेयरमैन को इस पते पर खत लिखिये : हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, 165/166, बैकबे रिक्लेमेशन, मुंबई-400020 (फैक्स : 2850552)

II) मुख्यमंत्री, पश्चिम बंगाल, राइटर्स बिल्डिंग, कोलकाता- 700001 को अवैध तालाबंदी खत्म करने के लिए पत्र लिखें।

पत्रों की एक प्रतिलिपि इस पते पर यूनियन को भी भेजें : जी-301/1/ए, रामनगर लेन, गार्डन रीच, कोलकाता-700024

चीन के सरकारी उद्यमों में भी ठेका सिस्टम लागू

क्या अब भी भ्रम है चीनी "समाजवाद" के बारे में?

चीनी हुक्मरानों ने चीन के मजदूर वर्ग को नये वर्ष के मौके पर 'हायर एण्ड फायर' का तोहफा दिया है। इस फैसले से चीन के 'पब्लिक सेक्टर' में भी पक्की नौकरी की संभावनायें खत्म हो जायेंगी और मजदूरों को ठेकेदारी प्रथा के नरक में धकेल दिया जायेगा। चीनी सरकार के इस फैसले की मार चीन के पब्लिक सेक्टर के तीन करोड़ कर्मचारियों पर पड़ेगी। यह बीजिंग में देशभर के 'पर्सनल ऑफिसर्स' की बैठक में पांच जनवरी को तय किया गया। चीन के उपकार्मिक मंत्री शु हियुगो का कहना है कि ठेका प्रणाली को अगले पांच सालों में देश के तेरह लाख 'पब्लिक इण्टरप्राइजेज' में लागू कर दिया जायेगा।

चीन का नकली समाजवाद मजदूर-वर्ग पर एक के बाद एक हमले कर रहा है। चीन में सर्वहारा के महान नेता माओ की मृत्यु के बाद 1976 में सत्ता पर संशोधनवादी देङ गिरोह का कब्जा हो गया था और वहां पूँजीवादी पुनर्स्थापना हो गयी थी। लेकिन चीन के इन नये पूँजीवादी शासकों ने मजदूर वर्ग को धोखा देने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी का जाप करना और लाल झण्डा उड़ाना जारी रखा और मजदूर वर्ग पर एक के बाद एक हमले करते चले गये। अब मजदूरों की हर सुख-सुविधा, सभी बुनियादी हक छीने जा रहे हैं। साझी खेती को खत्म किया जा रहा है। सरकारी क्षेत्र के कारखानों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा है।

चीन के निजी क्षेत्र में तो पहले से ही पक्की नौकरी जैसी किसी चीज का नामो-निशान नहीं है, ठेका प्रथा का बोलबाला है। अब यही किस्सा वहां पब्लिक सेक्टर में भी दोहराया जायेगा। मतलब यह कि निजी क्षेत्र के साथ-साथ पब्लिक सेक्टर में भी मजदूरों को रोजगार की गारण्टी नहीं होगी। हर उद्योग में मालिकों, नौकरशाहों का कानून चलेगा, जो कम से कम तनख्वाहों पर मजदूरों का खून निचोड़ेंगे, चूँ-चपड़ करने पर नौकरी से निकाल बाहर करेंगे। इसी को 'हायर एण्ड फायर' कहा जा रहा है।

यह सब श्रम उत्पादकता बढ़ाने, अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के नाम पर किया जा रहा है। श्रम बाजार को "लचीला" बनाने के लिए इस तरह के मजदूर-विरोधी काले कानून बनाये जा रहे हैं जिससे देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सस्ते से सस्ता श्रम उपलब्ध हो जाये और वे अधिक से अधिक मुनाफा कमा सकें। इसी नजरिये से चीन के लाल पताकाधारी हुक्मरान ऐसी नीतियां बना रहे हैं जिनसे कृषि क्षेत्र के करीब एक करोड़ मजदूर बेदखल होकर कारखाना क्षेत्रों में पहुंच जायें। औद्योगिक केन्द्रों पर मजदूरों की भीड़ इकट्ठी होगी तो देशी-विदेशी मुनाफाखोरों को आसानी से सस्ते मजदूर मिल जायेंगे।

यह है इस तथाकथित समाजवादी चीन की असलियत जिसके बारे में हमारे देश के संसदमार्गी वामपंथी मजदूरों में तरह-तरह के भ्रम फैलाते हैं कि चीन में मजदूरों की हुकूमत है। जो लोग अभी भी चीन के समाजवादी देश होने के बारे में किसी भ्रम में हैं, उन्हें तथ्यों की रोशनी में जल्द से जल्द अपने भ्रमों से निजात पा लेनी चाहिए।

● नीरज

उत्तरांचल राज्य में मेहनतकशों की बढ़ती बदहाली

पूंजीपति छुट्टा साँड, मज़दूरों की साँसों पर पहरे

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। तमाम संघर्षों और कुर्बानियों के बाद जब ढाई वर्ष पूर्व नये उत्तरांचल राज्य का गठन हुआ तो राज्य की जनता ने सोचा था कि अब उनके कष्ट झेलने के दिन लद गये। लेकिन न तो ऐसा होना था और न ही हुआ। धीरे-धीरे भ्रम की दीवारें टूटती गयीं और सपने बिखरते गये।

यहां की जनता ने उत्तराखण्ड की मांग की थी, मिला उत्तरांचल। जंगल-जमीन-शराब माफियाओं से उसने मुक्ति की कल्पना की थी, लेकिन इनकी जकड़बन्दी और ज्यादा बढ़ गयी। पिछले ढाई वर्षों के दौरान भाजपा और कांग्रेस दोनों ने शासन किया, तीन मुख्यमंत्री आये और गये, लेकिन मेहनतकश अवाम लगातार ठगा जाता रहा। नौकरियां मिलने के पहले से ही तंग रास्ते और सिकुड़ गये; कारखानों व फार्मों के मालिकों का दबाव व शोषण और ज्यादा बढ़ता गया। मज़दूरों को धोखा देकर उद्योगों का पलायन तेज हो गया।

यूं तो सरकार की मंशा उसी वक्त स्पष्ट हो गयी थी, जब राज्य गठन के समय ही उसने सचिवालय में भर्ती की जगह सुरक्षा-सफाई-बागवानी आदि कामों को ठेके पर देने की घोषणा की थी। जब भाजपा सरकार ने नियमित भर्ती पर रोक का शासनादेश जारी कर दिया था। उसने शिक्षा क्षेत्र में शिक्षा मित्र, शिक्षा बन्धु, विजिटिंग प्रोफेसर आदि नामों से अनुबन्ध प्रणाली को ही गति प्रदान की थी। अब कांग्रेस सरकार ने अनुबंध व अंशकालिक भर्तियों पर भी रोक लगाकर अस्थायी कामों पर रोक लगा दिया है। राज्य की जनता को उदारीकरण की जबर्दस्त मार झेलनी ही थी।

श्रम विभाग के अनुसार राज्य के गढ़वाल व कुमाऊं दोनों मण्डलों में 1037 कारखाने पंजीकृत हैं जिसमें 69,079 मज़दूर काम करते हैं। हालांकि सच्चाई इसके उल्टी है। एक अनुमान के अनुसार लगभग ढाई लाख मज़दूर (नियमित, दैनिक वेतनभोगी, अनुबंध, पीस रेट व ठेकेदारी में) इन कारखानों में खट रहे हैं इनमें ज्यादातर कारखानों में श्रम कानून का कोई भी मतलब नहीं है। इसके अलावा लगभग 50 हजार मज़दूर तो केवल नदियों से रेता-बजरी निकालने और स्टोन-क्रशरों में अपनी जिन्दगी खपाकर जैसे-तैसे अपना और परिवार का पेट पाल रहे हैं।

राज्य की औद्योगिक नगरी ऊधमसिंहनगर व नैनीताल जिले में बीस हजार से ज्यादा महिलाएं विशेष किस्म के 'एक्सपोर्ट क्वालिटी' रजाइयों में बेहद मामूली भुगतान पर बने डिजाइनों में धागा डालने के काम में लगी हुई हैं इनमें से ज्यादातर महिलायें फेफड़े, कमर व आंख की मरीज हो जाती हैं। पंतनगर विश्वविद्यालय सहित यहां की पूरी तराई में हजारों एकड़ के बड़े-बड़े फार्म हैं जहां हजारों की संख्या में मज़दूर अनिश्चित भविष्य के साथ अपना खून-पसीना निचुड़वा रहे हैं। ईंट भट्टों से लेकर भवन निर्माण व अन्य तमाम कामों में लगकर, रिक्शा से लेकर छोटी-बड़ी गाड़ियां चलाकर, पहाड़ों में लीसा आदि निकालकर गुजर-बसर करने वाली एक भारी आबादी ऐसी है जिसकी कहीं कोई गणना ही नहीं है। इनमे से एक बड़ी आबादी ऐसी भी है जो फैक्ट्रियों से लेकर खेतों-खलिहानों व ढुलाई आदि कामों में अपने को खपाने के लिए भटकती रहती है और प्राय: बेरोजगारी की मार झेलती है। ठेका, पीस रेट आदि पर जहां काम मिलता भी है, वहां मालिकों व ठेकेदारों के दमन का वे शिकार बने रहते हैं।

राज्य के कारखानों और उनके मज़दूरों की स्थिति और भी दयनीय है। काशीपुर व जसपुर की कताई मिलें सरकारी नीतियों के चलते पिछले पांच वर्षों से बन्द पड़ी हैं, मज़दूरों को वेतन तक नहीं मिल रहा है, जिससे वे भुखमरी की कगार पर पहुंच गये हैं। यहां के 9-10 मज़दूर रोटी व दवा के अभाव में असमय ही मौत के मुंह में समा चुके हैं। श्रम कानूनों को लागू करवाने के लिए विगत पांच माह से संघर्षरत शीलचन्द एग्रो लालपुर के मज़दूर विकट स्थिति में पहुंच चुके हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की अग्रणी रानीबाग (नैनीताल) स्थित एच.एम.टी. फैक्ट्री के मज़दूर सात माह से वेतन न मिलने, जबरिया वी.आर.एस. और बन्दी की आशंका से ग्रसित हैं और संघर्षरत हैं। इस्टर इण्डस्ट्रीज, खटीमा के मज़दूर प्रबन्धन के दमन और जबरिया निष्कासन की मार झेल रहे हैं। चीनी मिल मज़दूरों का समय से वेतन भुगतान नहीं हो रहा है, छंटनी की तलवार उनपर भी लटकी हुई है।

ऋषिकेश स्थित सार्वजनिक दवा कारखाना आई.डी.पी.एल. व स्टर्डिया केमिकल्स का पूर्णत: बंद होना महज एक घटना नहीं है। गढ़वाल व 'कुमाऊं मण्डल विकास निगम' के उद्योग मरणासन्न स्थिति में हैं। भीमताल व भुवाली का औद्योगिक क्षेत्र वीरान हो चुका है। सलोरा, नैना सेमी कण्डक्टर, ऊषा मारकोनी आदि कारखाने, मज़दूरों को धोखा देकर यहां से भाग चुके हैं। अल्मोड़ा जिले के लीसा मज़दूरों का काम के बावजूद वेतन रुका हुआ है। दूसरी तरफ सरकार ने राज्य के जिला उद्योग केन्द्रों का औद्योगिक विकास निगम में विलय करके निजीकरण की दिशा में एक और कदम बढ़ा दिया है।

राज्य के संगठित-असंगठित क्षेत्र के सभी मज़दूर, मालिक-श्रम विभाग-प्रशासन के गठजोड़ की भयानक मार झेल रहे हैं। लगातार बढ़ रहा मज़दूरों का आक्रोश यदि कहीं संघर्ष का रूप लेता है तो वह कारखाना/ विभाग केन्द्रित बना रहता है और सरकारी दमन का शिकार हो जाता है। मज़दूर आन्दोलनों पर हावी पुराने दिग्गज नेताओं ने मज़दूर आबादी को बांट रखा है और उनके संघर्ष की धार भोथरी कर दी है। स्थिति यह है कि मज़दूरों का आन्दोलन कोई बड़े या इलाकाई आन्दोलन का रूप नहीं ले पा रहा है। दूसरी तरफ पूंजीपतियों का 'गढ़वाल-कुमांऊ चैम्बर आफ इण्डस्ट्रीज एण्ड कामर्स' बेहद सक्रिय है। उदारीकरण के नाम पर देश में जारी नीतियां उनके हित में है और सरकार मालिकों के पक्ष में खुलकर खड़ी है।

प्रसंगवश एक उदाहरण गौरतलब है कि पिछले दिनों राज्य के "विकास पुरुष" मुख्यमंत्री एन.डी.तिवारी ने समाधान की जगह शीलचन्द मज़दूरों के एक प्रतिनिधिमण्डल से छूटते ही कहा कि 'मैं उद्योगपतियों को यहां उद्योग लगाने के लिए मना रहा हूं और आप लोग हड़ताल करके उन्हें भगा रहे हैं।' मुख्यमंत्री के इस बयान से ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि सरकारी मंशा क्या है? यह पूंजीवादी वैश्विक लुटेरों के 'रोजगार विहीन विकास' की ही एक अभिव्यक्ति है।

आज उत्तरांचल में जो कुछ भी हो रहा है, वही अलग-अलग रूपों में पूरे देश के पैमाने पर हो रहा है। समग्रता में स्थितियां एकदम साफ हैं। यह विगत लगभग डेढ़ दशक से पूरे देश में लागू हो रही उदारीकृत नीतियों से उपजी स्थिति की ही एक तस्वीर है।

• आशीष

असंगठित मज़दूरों के लिए कुछ घड़ियाली आंसू और एक नया झुनझुना

ललित

सत्ताधारी चुनावबाज घड़ियालों की आंखों में जब आंसू छलछला रहे हों, गला भर्रा रहा हो तो सावधान हो जाने की जरूरत है कि जरूर कोई प्रपंच रचा जा रहा है, फिर कोई जाल बुना जा रहा है। इन दिनों असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की स्थिति 'एकदम सुधार कर रख देने' के वायदे किये जा रहे हैं। वायदा पूरा होगा कि नहीं इसको भविष्य क्या बतायेगा, इसको अभी बताया जा सकता है कि कभी नहीं पूरा होगा। पिछले छप्पन साल का इतिहास बताता है कि हुक्मरानों ने आम जनता से वायदा खिलाफी में कोई कोताही नहीं बरती है। आम मजदूर यह बात जान चुका है, बावजूद इसके चुनावबाज मदारियों द्वारा घड़ियाली आंसू बहाये जा रहे हैं, वायदे किये जा रहे हैं, नये भ्रमजाल खड़े किये जा रहे हैं, लोकलुभावन नारे उछाले जा रहे हैं।

'असंगठित मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए संसद में इसी सत्र में एक विधेयक पेश किया जायेगा' यह भारी-भरकम वायदा केन्द्रीय श्रममंत्री साहिब सिंह वर्मा ने पिछले माह किया। सच्चाइयों से बेशर्मी के साथ मुंह चुरा भी लिया जाय तो सच्चाई सिर चढ़कर बोलेगी, यह बात मंत्री महोदय समझते हैं। समझदार मंत्री ने यह स्वीकारा कि केन्द्र और राज्यों में श्रमिकों से संबंधित करीब ढाई सौ कानून पहले से मौजूद हैं। 'लेकिन ये किसी काम के नहीं हैं' यह मंत्री महोदय ने नहीं कहा। समझदार मंत्री ने कहा कि उनके अमल में अनेक खामियां रह जाती हैं। हिन्दुस्तान के मुनाफाखोरों की मैनेजिंग कमेटी में श्रम मंत्री के पद पर आसीन व्यक्ति की इस समझदारी की दाद देनी होगी। मजदूर विरोधी नीतियों को लागू करने में सबसे अग्रणी सरकार के श्रममंत्री ने श्रम सुधारों की भी वकालत की है।

श्रममंत्री के असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए कुछ कर गुजरने के दावे की पोल यह सीधी-सी सच्चाई एकदम खोल कर रख देती है कि कोई भी विधेयक, कोई भी कानून, यहां तक कि न्यूनतम मजदूरी कानून भी असंगठित क्षेत्र में आज तक लागू न हो सका। फिर किसी नये लोकलुभावन कदम का क्या मतलब? वह भी तब, जबकि लोकलुभावन नारों का दौर बीत चुका। दरअसल, सरकार जिसे असंगठित क्षेत्र कहती है, वहां करीब 37 करोड़ मजदूर आज काम कर रहे हैं। सरकारी भोंपू संगठित क्षेत्र-असंगठित क्षेत्र लाख बार चिल्लायें, हकीकत यह है कि जिन्दगी की मजबूरियां इन सभी मजदूरों को भविष्य में सड़कों पर उतारेंगी. और ये लाखों मजदूर एक संगठित शक्ति के रूप में पूंजीवादी व्यवस्था को चुनौती देंगे। सरकार भी इस हकीकत को अच्छी तरह जानती है और वह भविष्य की तैयारियों में अभी से जुटी है।

एक तरफ नये-नये श्रम कानून लागू कर मजदूरों के बुनियादी हकों को छीना जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की 'सामाजिक सुरक्षा' के नाम पर मजदूरों को कुछ झुनझुने पकड़ाकर सरकार अपना पल्ला झाड़ लेना चाहती है। देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सेवा में जी-जान से लगी सरकार की मंशा साफ है। वह श्रम सुधारों के नाम पर सारे कानूनी अधिकारों को छीनकर मजदूरों को बाजार की बेरहम ताकतों के हवाले कर देना चाहती है, ताकि मुनाफाखोर सरेआम मजदूर के खून की आखिरी बूंद को भी निचोड़कर सिक्के में ढाल सके।

पूंजीपति वर्ग के वफादार सेवकों के मजदूर आन्दोलन को लगातार कमजोर करते हुए संगठित हमले बोलने के इरादे एकदम साफ हैं। वह कार्रवाई शुरू भी कर चुके हैं। अब मजदूर वर्ग को तय करना है वह तमाम भ्रमजालों से बाहर आकर जवाबी हमला कब करता है?

चूं-चपड़ मत करो! हिसाब लो, घर भागो!

टी.सी.एन.एस.लि. में ठेका प्रथा की मार

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा, गौतमबुद्धनगर। ठेका प्रथा की मार झेल रहे एक और कारखाने के मज़दूर तबाही की राह पर पहुंच चुके हैं। नोएडा स्थित टी.सी.एन.एस. लिमिटेड कम्पनी (से.-7, बी-56सी) के मालिक ने कम्पनी में ठेका प्रथा लागू करने के लिए एक-एक करके कम्पनी के परमानेण्ट मज़दूरों से जबरन त्यागपत्र लेना शुरू कर दिया है।

मालूम हो कि विदेशों में निर्यात के लिए सिले-सिलाए कपड़े बनाने वाली टी.सी.एन.एस. लि. कम्पनी की नोएडा में ही चार और शाखाएं चल रही हैं। इन सभी शाखाओं से कम्पनी मालिकान जबरदस्त मुनाफा पीट रहे हैं। से.7 स्थित शाखा में 403 परमानेण्ट मज़दूर कार्यरत थे। मज़दूरों के खून पसीने को निचोड़कर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की हवस से कम्पनी में ठेका प्रथा लागू करने के लिए बीते छह माह से कम्पनी घाटा दिखाने का प्रयास करती रही। बीते तीन माह से छंटनी अपने जोरों पर रही और मज़दूरों को जबरन हिसाब लेने के लिए मजबूर कर दिया गया।

इस कारखाने में मज़दूरों की कोई यूनियन भी नहीं है। कुछ लोगों ने यूनियन बनाने का प्रयास भी किया था जिनको मालिक के कोपभाजन होना पड़ा। पिछले सालों में मज़दूरों ने 'सीटू' के कुछ नेताओं से मिलकर यूनियन बनाने का प्रयास किया था। लेकिन मालिकान ने उन नेताओं की मुट्ठी गरम कर दी। यह मजदूरों का ही कहना है।

29 अप्रैल 2003 को मालिक ने मज़दूरों को यह सूचना दी कि कम्पनी में घाटा होने की वजह से कम्पनी बंद की जा रही है, तुम लोग अपना-अपना हिसाब ले लो। मज़दूरों ने इसका विरोध किया तो मालिक ने धमकी दी कि अगर तुम लोग हिसाब नहीं लोगे तो एक भी पैसा नहीं दिया जायेगा। हिसाब लेने वालों से बकायदा त्यागपत्र लिखवाया जा रहा है जिसमें लिखा है कि हम अपने घर की मजबूरी से हिसाब ले रहे हैं जबरन अंगूठा लगवाया जा रहा है। कुछ मज़दूरों ने इसका विरोध किया और यह लिखकर दिया कि हमें हिसाब लेने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इसलिए हम हिसाब ले रहे हैं। इन मज़दूरों का त्यागपत्र मंजूर ही नहीं किया गया। मजबूर होकर कुछ जागरूक मज़दूरों ने व्यापक स्तर पर मज़दूरों का हस्ताक्षर करवा डी.एल.सी. को सुपुर्द करके बुलवाया। डी.एल.सी. और मालिक में गुफ्तगू हुई। उनकी भी मुट्ठी गर्म कर दी गयी और वे अपना 'मेहनताना' लेकर अपने आफिस लौट गये।

5 अप्रैल, 03 को 'बिगुल' प्रतिनिधियों ने जाकर मज़दूरों से बातचीत की, जिससे पता चला कि 403 कर्मचारियों में अधिक से अधिक संख्या महिलाओं की है जिन्हें धमकाकर हिसाब लेने के लिए मजबूर कर दिया गया और वे हिसाब लेकर चली भी गयी हैं। इक्का-दुक्का महिलाएं और कुछ लड़के बचे हैं जो कारखाने के अन्दर नियत समय से जाते हैं और नियत समय से लौटकर आते हैं। हाजिरी भी लगाई जा रही है। ये अभी भी आस लगाए हुए हैं कि हो सकता है किसी और ब्रांच में रख लिया जाय लेकिन

(शेष पृष्ठ 6 पर)

अपने–अपने चुनावी भविष्य को लेकर बढ़ती बेचैनियां

(पृष्ठ 1 का शेष)

राजनीतिक हलकों में जारी इन सरगर्मियों से या तो पूरी तरह अलग-थलग पड़ा हुआ है या हिकारत के साथ देख रहा है। मेहनतकश अवाम की क्रान्तिकारी ताकतों की टूट-फूट और बिखराव से पैदा कमजोर हालत के चलते उसे कोई उम्मीद भी नज़र नहीं आ रही है। आज देश के आम मेहनतकश अवाम के भीतर गहरे तक जड़ जमा चुकी पस्तहिम्मती और निराशा का आलम यह है कि वह किसी मसीहा के इन्तजार में अपने दुर्दिन के पलटने की बाट जोह रहा है। संसदीय जनतंत्र का पहाड़ जैसा बोझ उसकी छाती पर लदा हुआ है ओर सबसे अहम सवाल फिलहाल यही है कि इस बोझ को वह कैसे हटाये?

क्रान्तिकारी ताकतों की मौजूदा कमजोर स्थिति को देखते हुए यह भ्रम शायद ही किसी को हो कि आने वाले लोकसभा चुनावों के पहले कोई चमत्कार हो जायेगा और कोई क्रान्तिकारी विकल्प उभर आयेगा। दरअसल, आज सवाल किसी फौरी विकल्प का रह भी नहीं गया है। क्रान्तिकारी विकल्प का सवाल आज एक दूरगामी सवाल ही हो सकता है। सवाल यह है कि संसदीय जनतंत्र का ठोस क्रान्तिकारी विकल्प क्या हो सकता है ओर उसकी तैयारी कैसे हो?

समाज की जो भी प्रगतिशील और बुनियादी बदलाव में आस्था रखने वाली अगुवा ताकतें हैं सबसे पहले उन्हें अपने वैचारिक विभ्रमों से बाहर निकलना होगा। जब तक देश के समूचे उत्पादन तंत्र पर, राजकाज की व्यवस्था पर और समाज के समूचे ढाँचे पर देशी-विदेशी इजारेदार पूँजीपतियों और शहरों एवं गाँवों के मुट्ठी भर अमीर तबकों का कब्जा कायम रहेगा तब तक देश की मेहनतकश जनता की तबाही-बर्बादी से मुक्ति नहीं हो सकती। इस सीधी-सरल सच्चाई को बेलाग-लपेट ढंग से देश के आम मेहनतकश अवाम की आम समझ का हिस्सा बनाना होगा। मेहनतकश अवाम को यह समझाना होगा कि उसकी तबाही का कारण अर्थव्यवस्था और देश की शासन व्यवस्था में नीचे से ऊपर तक फैला भ्रष्टाचार मात्र नहीं है। भ्रष्टाचार अपने आप में बीमारी नहीं बीमारी का लक्षण मात्र है। हर साल अरबों रुपये के जो घपले-घोटाले और रोज-रोज होने वाली तरह-तरह की जो गैरकानूनी लूट है वह तो लूट के विशाल हिमखण्ड का बस ऊपर दिखायी पड़ने वाला हिस्सा है। देश की अर्थव्यवस्था की बुनियाद ही श्रमशक्ति की लूट पर टिकी हुई है। यह कानूनी लूट है। संविधानसम्मत लूट है और मौजूदा संविधान से शासित होने वाली शासन व्यवस्था इसी संवैधानिक लूट की हिफाजत करने वाली व्यवस्था है। देश के मेहनतकश अवाम के खून-पसीने से केवल देशी-विदेशी पूँजीपतियों की तिजोरियाँ ही नहीं भरतीं वरन शासन चलाने के सारे खर्चों का बोझ भी उसे ही उठाना होता है। राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री कार्यालय सहित समूचे मंत्रिमण्डल-संसद-विधानसभाओं की कार्यवाहियों पर होने वाले बेशुमार खर्चों से लेकर जनप्रतिनिधियों के वेतन भत्तों-सुविधाओं व उनकी सुरक्षा के नाम पर होने वाले खर्चों, व जनतंत्र के तमाशे पर होने वाले खर्चों, अफसरशाही के खर्चों व देश की सुरक्षा के नाम पर होने वाले अन्धाधुन्ध अनुत्पादक खर्चों का बोझ मेहनतकश जनता ही उठाती है। इस सीधी-सादी सच्चाई को लोगों तक पहुँचाना चाहे जितना कठिन हो पर समाज के जागरूक-संवेदनशील अगुवा लोगों को यह जिम्मेदारी उठानी ही होगी। रास्ता एक ही है–संसदीय जनतंत्र के इस क्षरित होते हुए पहाड़ को उठाकर हिन्द महासागर में डुबो देना। विकल्प एक ही है–सारी सत्ता मेहनतकशों को, यानी समूचे उत्पादन, राजकाज और समाज के सम्पूर्ण ढाँचे पर मेहनतकश वर्ग का नियंत्रण । बाजार और मुनाफे की जगह इन्सानी जरूरतों को उत्पादन के केन्द्र में स्थापित कर एक नई उत्पादन प्रणाली कायम करना। इसे कायम करने के लिए सबसे पहले मेहनतकश क्रान्ति के जरिये राज्यसत्ता पर कब्जा करना होगा। केवल तभी भूख, बेकारी और हर प्रकार के शोषण-उत्पीड़न-गैरबराबरी से मुक्त बिल्कुल नये मानवीय समाज को बनाया जा सकता है। देश के मौजूदा संसदीय जनतंत्र के ढाँचे के कायम रहते और चुनावी राजनीति के रास्ते से इस लक्ष्य को हासिल करना असम्भव है। पिछले छप्पन साल के तजुर्बों के आधार पर क्या अब भी किसी को भ्रम है कि चुनावों के जरिये फैसला सिर्फ इसी बात का होता है कि लुटेरों का कौन सा गिरोह सत्ता पर बैठेगा?

सारी सत्ता मेहनतकशों को–यह लक्ष्य चाहे जितना दूर नज़र आये या कठिन लगे हमें मेहनतकश अवाम को इसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए तैयार करना होगा। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के जुवे को मेहनतकश अवाम के कन्धों से उतार फेंकने वाली इस नयी समाजवादी क्रान्ति की अगुवाई करने वाला कोई अखिल भारतीय क्रान्तिकारी केन्द्र अभी देश में मौजूद नहीं है, यह आज की एक निर्मम सच्चाई है। ऐसी क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी के निर्माण व गठन की समस्याओं और चुनौतियों के बारे में हमने 'बिगुल' के पिछले अंक में कुछ नुक्तों में इशारा किया है। आगामी अंकों में हम इसके तमाम पहलुओं और इससे जुड़ी समस्याओं-चुनौतियों के बारे में अपनी राय और भी विस्तार से प्रकट करेंगे लेकिन इतना तो तय ही है कि इसका रास्ता भी आसान नहीं है और निकट भविष्य में जल्दी ही कोई उत्साहजनक स्थिति पैदा होने की सम्भावना के बारे में सोचना आत्मसम्मोहनकारी भ्रमों में जीना होगा। जरूरत है निर्मम सच्चाइयों को स्वीकार करने के साहस की और यथार्थवादी नजरिये की। हमारी उम्मीदें ठोस यथार्थ की जमीन पर खड़ी होनी चाहिए और उस जमीन की तलाश के लिए जिस चीज की सबसे अधिक जरूरत है वह है सर्वहारा क्रान्तियों के विज्ञान की सही वैज्ञानिक समझ, हर तरह के कठमुल्लावाद से मुक्ति और अतीत की क्रान्तियों की प्रेतबाधाओं से मुक्ति।

तो फिर उम्मीद की किरणें कहाँ हैं? हमें आज सबसे पहले उम्मीदें समाज के भीतर व्याप्त उस भीषण बेचैनी, विकल्प की छटपटाहट और भविष्य के अंकुरों में तलाशनी चाहिए जो आज की हताशा–निराशा की ऊपरी कठोर सतहों के नीचे पल रहे हैं। देश का मेहनतकश अवाम भूमण्डलीकरण की नीतियों से मची तबाही का शिकार होते हुए उस स्थिति में पहुँचता जा रहा है जहाँ वह अपने हरावलों के आह्वानों पर कान देना शुरू कर देता है। विश्व पूँजीवादी अर्थतंत्र का संकट भी नये-नये आयाम ग्रहण करता जा रहा है। इराक-युद्ध के बाद साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच मौजूद होड़ के और तीखे होने के संकेत मिल रहे हैं। यह आने वाले दिनों में निश्चित रूप से समूची दुनिया के स्तर पर भीषण सामाजिक संकटों के रूप में फूटेगा। इसके संकेतों को पहचानना कठिन नहीं है। इन हालात में मेहनतकश अवाम के बीच मौजूद हरावल भी जड़ता तोड़कर अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए आगे आयेंगे, ये तय है। यह इतिहास का नियम है।

आज पहले से मौजूद क्रान्तिकारी संरचनाओं की आपसी एकता के आधार पर किसी फौरी क्रान्तिकारी विकल्प की उम्मीदें भले ही धूमिल पड़ चुकी हैं लेकिन यह भविष्य के प्रति नाउम्मीदी का कारण नहीं बनना चाहिए। हमें उम्मीदें मेहनतकश अवाम के भीतर घनीभूत होती जा रही परिवर्तन की इच्छा और उसके हिरावलों की पहलकदमी और क्रान्तिकारी साहस पर ही टिकानी होंगी। हमें मेहनतकश अवाम के बीच क्रांतिकारी विकल्प की ठोस तस्वीर पेश करनी होगी जिससे वह भविष्य के सपने देख सके क्योंकि निराशा की अन्धेरी गुफाओं से बाहर निकलने के लिए भविष्य स्वप्नों के सहारे की जरूरत होती है।

पूंजीवादी जनतंत्र का असली चेहरा......

(पृष्ठ 1 का शेष)

के लिए पुलिस ने न केवल बर्बर लाठीचार्ज किया बल्कि कई राउण्ड गोलियां भी चलायी जिससे लगभग एक दर्जन लोग घायल हो गये । इस पुलिसिया कार्रवाई का मजदूरों-किसानों ने जमकर प्रतिरोध किया और आखिरकार कम्पनी को अपने कब्जे में ले लिया।

कम्पनी पर मजदूरों के कब्जे के बाद जिला प्रशासन की मध्यस्थता में बैंकरों और मजदूर प्रतिनिधियों की वार्ता हुई जिसमें बैंकरों ने मसले का हल निकालने के लिए पन्द्रह दिनों की मोहलत माँगी। इस आश्वासन के बाद प्रशासन की सहमति से मजदूरों ने कम्पनी गेट पर अगले दिन से दिन-रात का धरना शुरू किया। मजदूरों की माँग है कि जिस तरह कम्पनी डायरेक्टरों के भाग जाने के बाद बैंकरों को अपनी वसूली के लिए कम्पनी पर कब्जा करने व उसकी परिसम्पत्तियों को बेचने का अधिकार मिला उसी तरह उनके हक की भी हिफाजत की जाये। मजदूरों की बेहद वाजिब माँग यह है कि कम्पनी को जो भी नया मालिक खरीदे वह मजदूरों को काम पर रखने की गारण्टी ले। साथ ही कम्पनी पर उनके सभी बकायों का भुगतान किया जाये।

पन्द्रह दिन की मोहलत की अवधि के दौरान बैंकरों से मजदूर प्रतिनिधियों की दो बार वार्ताएँ हुईं लेकिन बैंकरों ने सिर्फ टालमटोल का रवैया अख्तियार किया। मजदूरों ने क्षेत्र के तमाम जनप्रतिनिधियों सहित उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती, केन्द्रीय श्रम मंत्री साहिब सिंह वर्मा, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक अपने हकों की आवाज पहुँचाई लेकिन कोरे आश्वासनों के सिवा कुछ नहीं मिला है। साहिब सिंह वर्मा से मजदूर प्रतिनिधियों ने दो बार व्यक्तिगत रूप से मुलाकात कर स्थिति से अवगत कराया लेकिन कोई ठोस नतीजा नहीं निकला। अब आगामी 16 जून को साहिब सिंह वर्मा के निर्देश पर बैंकरों से दिल्ली में वार्ता होनी तय है। मजदूर धैर्य के साथ इस वार्ता के नतीजों का इन्तजार कर रहे हैं। अगर इस वार्ता का नतीजा भी ढाक के तीन पात रहा तो आन्दोलन कोई भी उग्र रूप अख्तियार कर सकता है।

देवू मोटर्स की यह कहानी देश में भूमण्डलीकरण की नीतियों से मजदूरों पर आयी तबाही की ही कहानी है। इस दौर में देश में केन्द्र और राज्यों में सत्तारूढ़ सभी चुनावी राजनीतिक पार्टियों की सरकारें हद दर्जे की बेहयाई के साथ देशी-विदेशी मुनाफाखोरों के मुनाफों की हिफाजत कर रही हैं। देवू मोटर्स के मामले में भी यह चीज बिल्कुल साफ दिख रही है। मजदूरों की रोजी-रोटी छिन जाये, उनकी जिन्दगी तबाह हो इससे बेफिक्र सरकारें बस मुनाफे की सेवा में जुटी हुई है। अपने हक की आवाज उठाने पर मजदूरों पर लाठियाँ-गोलियाँ चलाने और जेल की सींखचों के पीछे कैद कर देने में सरकारें एक दूसरे से होड़ कर रही हैं। देवू मोटर्स में भी यही दुहराया जा रहा है। मजदूरों ने हक की आवाज उठायी तो लाठियाँ-गोलियाँ मिली और तमाम फर्जी मुकदमे ठोंक दिये गये।

इस कम्पनी की स्थापना 1984 में हुई थी जब राजीव गाँधी के शासन काल में विदेशी पूँजीनिवेश के लिए छूटों की शुरूआत हुई थी। ग्रेटर नोएडा में स्थापित यह पहली बड़ी कम्पनी थी जो डी.सी.एम. टोयोटा के संयुक्त उद्यम के रूप में स्थापित हुई थी। उस समय यह कम्पनी डायना नामक कार का निर्माण करती थी। कम्पनी शुरू होने पर 500 स्थानीय बेरोजगारों को इसमें काम मिला था। आगे चलकर डी.सी.एम. ने अपनी पूँजी निकाल ली। और 1994 में देवू कम्पनी की जब भागीदारी शुरू हुई तो 992 और मजदूरों को काम पर रखा गया। इनमें भी अधिकतर स्थानीय मजदूर थे। जो निकटवर्ती गावों के रहने वाले हैं। कुछ समय बाद टोयोटा कम्पनी ने भी अपनी पूँजी निकाल ली और कम्पनी का स्वामित्व पूरी तरह 'देवू' के हाथों में आ गया। इसके बाद सियेलो कार का निर्माण शुरू हुआ।

जैसा कि सभी पूँजीपतियों का चिरपरिचित हथकण्डा होता है,अपने मुनाफे की दर को लगातार बढ़ाते जाने के लिए देवू मोटर्स के मालिकान ने सितम्बर 2001 में 237 मजदूरों की छँटनी कर दी। यूनियन के नेतृत्व में मजदूरों ने इस नाजायज छँटनी के खिलाफ संघर्ष भी किया लेकिन मजदूरों को वापस काम पर लौटाने में कामयाबी नहीं मिल सकी। मजदूरों का हिसाब देकर कम्पनी ने छुट्टी कर दी। मार्च 2002 में एक बार फिर घाटे के बहाने 450 मजदूरों को निकालने की चर्चा शुरू हुई लेकिन पिछले अनुभव से सतर्क मजदूरों ने इस बार कम्पनी मैनेजमेण्ट की दाल नहीं गलने दी। इससे बौखलाये मैनेजमेण्ट ने जुलाई 2002 में मजदूरों की तनख्वाह में 30 प्रतिशत की कटौती कर दी। फिर धीरे-धीरे कम्पनी को बन्द करने की दिशा में घसीटा जाने लगा। पिछले साल के आखिर में कम्पनी ने प्रोडक्शन भी बन्द कर दिया। मजदूरों को बैठाकर तनख्वाह दी जाती रही और एक-एक कर डायरेक्टरों ने रफूचक्कर होना शुरू किया जिसकी आखिरी कड़ी विगत अप्रैल में आखिरी डायरेक्टर के भागने के रूप में सामने आयी।

देवू कम्पनी पर तीन बैंकों आई.सी.आई.सी.आई, आई.डी.बी.आई और एक्जिम बैंक की लगभग 1200 करोड़ रुपये की देनदारी है। जबकि एक आकलन के अनुसार कम्पनी की कुल परिसम्पत्तियों की कीमत 4000 करोड़ रुपये से भी अधिक है। बैंकरों के इस कर्ज को वसूलने में मदद के लिए शासन-प्रशासन ने जो तत्परता दिखायी वह इसी बात का एक सबूत है कि उनकी वफादारी किसके साथ है। दरअसल पूँजीवादी जनतंत्र का यही असली चेहरा होता है–पूँजीपतियों के लिए जनतंत्र और मजदूरों के ऊपर तानाशाही।

देवू मजदूरों का संघर्ष शुरू होने के साथ ही सपा, कांग्रेस आदि तमाम विपक्षी दलों के नेताओं के धरनास्थल पर दौरे शुरू हो गये जो लगातार जारी हैं। ये सभी मजदूरों के संघर्ष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाने, मजदूरों के हकों के लिए जान लड़ा देने और शासन की ईंट से ईंट बजा देने जैसे आग उगलने वाले भाषण दे रहे हैं। देहात मोर्चा शुरू से ही इस संघर्ष के साथ खड़ा दिखायी दे रहा है। 19 मई को कम्पनी पर मजदूरों के कब्जा आन्दोलन के समय में क्षेत्रीय किसानों को गोलबन्द करने में देहात मोर्चा की अहम भूमिका रही है। मजदूरों की रणनीति यह है कि आन्दोलन के समर्थन में जो भी आना चाहता है, आये। यूनियन के अध्यक्ष श्री लच्छी सिंह ने इस संवाददाता को बताया कि हम अपनी लड़ाई मुख्यत: अपनी ताकत के दम पर लड़ रहे हैं, आसपास की क्षेत्रीय जनता का हमें भरपूर समर्थन मिल रहा है और हम हर कीमत पर अपनी लड़ाई में कामयाब होंगे।

बहरहाल,अब मजदूरों की निगाहें 16 जून की वार्ता पर टिकी हुई हैं। इसके नतीजों पर ही संघर्ष का भविष्य तय होगा।

परमानेण्ट मजदूरों से जबरन त्यागपत्र.....

(पृष्ठ 5 का शेष)

ऐसा सम्भव होता नहीं दिख रहा है। बिहार, बंगाल, नेपाल तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के दूरदराज से आने वाले ये मजदूर पिछड़ी चेतना के कारण खुद अपना संगठन नहीं बना पाये जिससे आन्दोलन भी नहीं कर पा रहे हैं। वैसे मज़दूरों में मालिक के प्रति अन्दर ही अन्दर काफी आक्रोश व्याप्त है। लेकिन एक जुझारू संघर्षशील यूनियन के अभाव में यह दबा हुआ है।

मज़दूरों से मिली जानकारी के अनुसार इस कम्पनी की नोएडा में कई शाखाएं हैं- (से. 58-C 53, से. 59 C-28, E-1, D-30)। से 59 सी-28 में भी ठेका प्रथा लागू करने के लिए व्यापक छंटनी की तैयारी शुरू हो गयी है। इसे भी से.7 की तरह बन्द कर देने की संभावना साफ दिखाई दे रही है।

कम्पनी के मजदूर साथियों को यह समझना होगा कि आज संघर्ष से हम जितना ही भागेंगे उतना ही ये लुटेरे मालिकान हमें नीलगाय की तरह पोंकियाते रहेंगे। हमें अकेले-अकेले नहीं बल्कि व्यापक मज़दूरों की क्रान्तिकारी एकजुटता कायम करके ठेका प्रथा के खिलाफ अपनी आवाज को बुलन्द करना होगा। तभी हम मालिकान की जालिम लूट का मुंहतोड़ जवाब दे पायेंगे और अपनी सच्ची मुक्ति की ओर आगे बढ़ पायेंगे।

विशेष सामग्री

(सत्ताइसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 9

पार्टी की "तीन महान कार्यशैलियाँ"

एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजूदर वर्ग क्रान्ति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी क्रान्ति का रास्ता छोड़ संसदीय रास्ते पर चलने वाली नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सबसे ऊपर है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी 2001 के अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में सत्ताइसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गई श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गई थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से क़िया गया है। – सम्पादक

जन समुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखने की कार्य-पद्धति

जनता के साथ नजदीकी संबंध कायम रखना और सभी मुद्दों पर उनके साथ चर्चा करना हमारी पार्टी की श्रेष्ठ परम्परा रही है, उस शक्ति का स्रोत रहा है जिसने पार्टी को अपने सभी शत्रुओं को पराजित करने और सभी बाधाओं को पार करने के काबिल बनाया है।

मार्क्सवाद मानता है कि जनता के व्यापक समुदाय इतिहास के नियोजक हैं; वे ही वह निर्णायक शक्ति हैं जो समाज को आगे ले जाती है। जनता के समुदाय न सिर्फ दुनिया की भौतिक और आध्यात्मिक सम्पदा के सर्जक हैं बल्कि ये उनके क्रांतिकारी संघर्ष ही हैं जो समाज को आगे बढ़ाने की प्रेरक शक्ति हैं। यह एक मूलभूत ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण है। मार्क्स और एंगेल्स ने बताया है: **"ऐतिहासिक गति जनता के परिश्रम का फल होती है"** (कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स **पवित्र परिवार**, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, 1956, अंग्रेजी संस्करण) और लेनिन ने लिखा है: **जीवंत, सृजनात्मक समाजवाद स्वयं जनता की मेहनत का फल है"**, (व्ला.इ. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड-26, "अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमेटी की बैठक, 4 (17) नवम्बर, 1917, प्रगति प्रकाशन मास्को, 1964, पृ-288, अंग्रेजी संस्करण") अध्यक्ष माओ ने भी दिखाया है: **"जनता और केवल जनता विश्व इतिहास की प्रेरक शक्ति है।"** (माओ त्से तुङ, **चुनी हुई रचनाएं**, खण्ड-3, "मिली-जुली सरकार के बारे में", पृ-207, अंग्रेजी संस्करण) जन समुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम करने के लिए हमें इस विचार को दृढ़ता से आत्मसात कर लेना चाहिए कि **"जनता वास्तविक नायक होती है,"** (माओ त्से तुङ, **चुनी हुई रचनाएं**, खण्ड-3, "दहातों की जांच-पड़ताल की प्रस्तावना और पश्चलेख", पृ-12, अंग्रेजी संस्करण), इस बात से सहमत होना चाहिए कि क्रांति की ताकत जनता के समुदायों पर टिकी होती है और इतिहास-निर्माता के रूप में उनकी गौरवशाली भूमिका को पूरी तरह मानना चाहिए। हमारी पार्टी जनता के समुदायों को नेतृत्व देने के काबिल है इसकी वजह निश्चित रूप से यह है कि यह जनसमुदाय के हितों की नुमाइंदगी करती है, पूरे दिल के साथ उनकी सेवा करती है, उन पर भरोसा करती है, उन पर ही निर्भर रहती है, और उनके साथ नजदीकी संबंध कायम रखते हुए, कम्युनिज़्म को हकीकत में बदलने के लिए संघर्ष करती है।

जनसमुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखना हमारी पार्टी की गौरवशाली परम्परा रही है। जनवादी क्रांति के समय, अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी लाइन के नेतृत्व में हमारी पार्टी ने पीपुल्स लिबरेशन आर्मी का गठन किया, और जनता को पूर्णत: लामबन्द करते हुए और उन पर निर्भर करते हुए, क्रांतिकारी आधार क्षेत्र स्थापित किए। इस तरीके से 28 वर्षों के बहादुराना संघर्षों के बाद, केवल ज्वार-बाजरे और कामचलाऊ राइफलों के बूते, उन जापानी फासीवादी लुटेरों को हराने में, जो अपने आप को अपराजेय समझते थे और अस्सी लाख की ताकत वाली कुओमिन्तांग की प्रतिक्रियावादी सेना का सफाया करने में सफल हुई, जिसे अमेरिकी साम्राज्यवाद रसद मुहैया करा रहा था। कठिन संघर्षों के उन वर्षों के दौरान, हमारी पार्टी और पीपुल्स आर्मी ने, जन समुदाय के सुख-दुख का साझीदार बनते हुए, एक शक्तिशाली शत्रु को पराजित किया और नवजनवादी क्रांति में एक संपूर्ण विजय प्राप्त की। समूचे देश को मुक्त कराने के बाद, जनता को पूर्णत: लामबन्द करते हुए, और दृढ़ता से उस पर निर्भर करते हुए, हमारी पार्टी ने देश के भीतरी और बाहरी, दोनों ही शत्रुओं द्वारा प्रोत्साहित किए गए विघटन और तोड़-फोड़ की गतिविधियों को तितर-बितर कर दिया है। स्वतंत्रता, आत्म-निर्भरता और कठिन संघर्ष की क्रांतिकारी भावना का प्रदर्शन करते हुए और पूरी शक्ति के साथ हमेशा आगे बढ़ते हुए, इसने बूढ़े, गरीब, पिछड़े और संकटग्रस्त चीन को एक नए समाजवादी चीन में बदल दिया है जो सम्पन्नता की अपनी राह प्रर अग्रसर है। स्वयं अध्यक्ष माओ द्वारा शुरू की गई और उनकी अगुवाई में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान हमारी पार्टी ने बड़े पैमाने पर जनता को लामबन्द किया, उस पर निर्भर रही, और सर्वहारा की तानाशाही के अंतर्गत व्यापक जनवाद लागू किए जाने के जरिए, एक जबर्दस्त जनांदोलन को खड़ा किया जो एक आवेशपूर्ण वेगधारा के रूप में फूट पड़ा था, जिसने दो बुर्जुआ हेडक्वार्टरों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला–एक ल्यू शाओ ची के नेतृत्व वाला और दूसरा लिन पियाओ के नेतृत्व वाला। इस तरह हमारी पार्टी ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान कई महत्त्वपूर्ण जीतें हासिल कीं। असंख्य तथ्य यह दर्शाते हैं कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा के हथियार से लैस जनसमुदाय अपराजेय हैं, अगर हम जनता में भरोसा रखें, उनपर निर्भर करें और उनके साथ नजदीकी संबंध कायम रखें तो हम जरूर जीत हासिल करेंगे।

जन समुदाय के साथ नजदीकी संबंध रखना या उससे अलग हो जाना (या उनसे भयभीत तक होना या क्रांतिकारी जनांदोलन का विरोध करना) महज प्रणाली का प्रश्न नहीं है बल्कि अवस्थिति और विश्व दृष्टिकोण का एक बुनियादी सवाल है। यह अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी लाइन और दक्षिणपंथी और "वामपंथी" अवसरवादी लाइनों के बीच संघर्ष में भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अवसरवादी लाइनों के सभी मुखिया प्रत्ययवादी (भाववादी) हैं। वे दुराहग्रहपूर्ण रूप से बुर्जुआ वर्ग का पक्ष लेते हैं हमेशा अपनी पूरी ताकत के साथ कुत्सा प्रचार करते हैं और जनता की अवज्ञा करते हैं। वे इतिहास-निर्माता के रूप में जनसमुदाय की महान भूमिका को मानने से इंकार करते हैं, पार्टी की जनदिशा का विरोध करते है, पार्टी के नेतृत्व वाले क्रांतिकारी जनांदोलनों के प्रति शत्रुतापूर्ण रूख अपनाते हैं और उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करते है। प्रथम क्रांतिकारी गृह-युद्ध के वक्त दक्षिणपंथी अवसरवादी लाइन के मुखिया, चेन तू-सियू ने चीनी सर्वहारा वर्ग के खिलाफ यह कहते हुए कुत्सा प्रचार किया कि यह "बचकाना" है, "एक स्वतंत्र क्रांतिकारी शक्ति संघटित नहीं" करता है, यह दावा किया कि चीनी जनता "गैर-अनुशासित", "रूढ़िवादी", है और "उन्हें क्रांति के पक्ष में सहमत कर लेना मुश्किल होगा।" क्रांति की शक्ति में उसे कोई भरोसा न था, उसने एक दक्षिणपंथी आत्मसमर्पणवादी लाइन को आगे बढ़ाया, और बहादुराना क्रांतिकारी आंदोलन को हार के गड्ढे में धकेल दिया। समाजवाद के ऐतिहासिक कालखण्ड के लिए पार्टी की बुनियादी लाइन को बदलने के लिए ल्यू शाओ ची और लिन पियाओ और उन जैसे दूसरे उच्चक्कों ने पार्टी की जनदिशा और जन समुदाय से नजदीकी संबंध कायम रखने के इसकी शानदार कार्यपद्धति भ्रष्ट करने के लिए पूरी ताकत के साथ काम किया। खुले तौर पर "पिछड़ी जनता" के सिद्धांत के फेरी लगाते हुए, ल्यू शाओ ची ने "चार सफाई अभियान" (काडर नीति के सवाल पर दो लाइनें संघर्षरत रही थीं, खास तौर से समाजवादी शिक्षा आंदोलन से। एक लाइन अध्यक्ष माओ की थी जो मानती थी कि काडरों की बहुसंख्या अच्छी है। दूसरी लाइन ल्यू शाओ ची की थी जो गलतियों और अनुपयुक्तताओं पर जोर देती थी जो "मुट्ठी-भर लोगों को बचाने के लिए विशाल बहुसंख्या पर प्रहार करने" की ओर लक्षित थी) के दौरान जनता की लामबंदी का विरोध किया, और, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान एक बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी लाइन लागू की और क्रांतिकारी जनांदोलन को दबाया। जहां तक लिन पियाओ का सवाल है, उसने "प्रतिभा के सिद्धांत" को लेकर काफी शोर मचाया और बेशरमी के साथ स्वयं को ही "प्रतिभावान" की उपाधि प्रदान कर डाली, जिसके पास की "स्वाभाविक ज्ञान" और "स्वाभाविक चेतना" है। साथ ही उसने मजदूरों और किसानों के व्यापक जनसमुदाय के खिलाफ, उन्हें निम्नवर्गीय लोग मानते हुए जो सिर्फ "अमीर होने और आनन्द प्राप्ति" में रूचि रखते हैं और "तेल, नमक, सोया, सॉस, सिरका और जलावन लकड़ी" के अलावा कुछ नहीं जानते हैं, कुत्सा प्रचार किया। लिन पियाओ और उसके गिरोह ने इस मूर्खतापूर्ण बात का भी प्रचार किया कि "नायक और गुलाम साथ-साथ इतिहास बनाते हैं," और इस प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मूल सिद्धांतों का निषेध करने के लिए दोहरे कुतर्क का इस्तेमाल करने का प्रयास किया। हमें ल्यू शाओ ची और लिन पियाओ की इतिहास की प्रतिक्रियावादी अवधारणा की सांगोपांग आलोचना करनी चाहिए, पार्टी और जनता के बीच के संबंधों को लगातार मजबूत बनाना चाहिए और दसवीं कांग्रेस द्वारा स्थापित राजनीतिक लाइन के मुताबिक साहस के साथ आगे बढ़ना चाहिए।

जनसमुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखने के लिए, हमें मामलों पर उनके साथ चर्चा करनी चाहिए और विनम्रता से उनकी राय को सुनना चाहिए। अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं कि **"असली व्यक्तिगत ज्ञान वाले लोग वे हैं जो दुनिया भर में व्यवहार में संलग्न हैं।"** (माओ त्से तुङ, **चुनी हुई रचनाएं**, खण्ड-1, "व्यवहार के बारे में", पृ-299, अंग्रेजी संस्करण) तीन महान क्रांतिकारी आंदालनों की अगली कतारों में लड़ते हुए, जनता के समुदायों के पास एक समृद्ध व्यवहारिक ज्ञान है। केवल जनता की राय को विनम्रता से सुनकर और मामलों पर उनके साथ चर्चा करके ही हम उनके विवेक को संकेन्द्रित कर सकते हैं, उनके आविष्कारों का उपयोग कर सकते हैं, उनके अनुभवों का संश्लेषण कर सकते हैं, और क्रांतिकारी व्यवहार का नेतृत्व करने के लिए आवश्यक सही ज्ञान को निकाल सकते हैं। जनता के साथ मामलों पर चर्चा करने के लिए हमें उनकी राय अवश्य सुननी चाहिए। जब काम में कुशलता की हमें कमी हो, जब दिक्कतें पैदा हों, या जब हमारे पास अपर्याप्त अनुभव हो, तो हमें उनकी बातें जरूर सुननी चाहिए, और यह और भी जरूरी तब हो जाता है जब हम स्थिति को अच्छी तरह जानते हैं, जब काम अच्छी तरह चल रहा हो और हमने जीतें हासिल कर ली हों। हमें जनता के सभी मतों को सुनना चाहिए भले ही हम उनसे सहमत हों या असहमत। हमें हमेशा प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति का अधिकार देना चाहिए, लोगों को वह अभिव्यक्त करने देना चाहिए जो उनके दिमाग में है। हमें अनिवार्य रूप से जनता के ज्ञान को इकट्ठा करना चाहिए और उसमें से जो मूल्यवान है उसे मूल्यहीन से अलग करना चाहिए, और माओ त्से तुङ विचारधारा के आधार पर चिंतन की एकता हासिल करनी चाहिए। केवल इसी रास्ते से हम जनता की पहल और सृजनात्मकता को पूर्ण रूप से काम में ला सकते हैं, उनके विवेक को पूर्ण रूप से संकेन्द्रित कर सकते हैं और क्रांति और निर्माण के विकास को और संवेग प्रदान कर सकते हैं। कुछ साथी सारी बातें स्वयं ही कर डालना चाहते हैं और जनता को अपने विचार व्यक्त करने ही नहीं देते। चाहे यह अनुसंधान कार्य हो या किसी समस्या को हल करना, वे समाधान ढूंढने वाले एकमात्र व्यक्ति बनना चाहते है–वे किसी और को बोलने नहीं देते–दूसरे केवल उनकी बात सुन सकते हैं और उनके आदेशों का पालन कर सकते हैं। यह कार्यपद्धति पूर्णत: गलत है; यह केवल जनता को अपने विचार अभिव्यक्त करने से रोक सकती है, उनकी पहल को निरुत्साहित कर सकती है और उनके और पार्टी के बीच के संबंधों को नुकसान पहुंचा सकती है।

जनसमुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखने के लिए, हमें उसके प्रति एक सही रवैया अपनाना चाहिए, और उसके साथ सही ढंग से व्यवहार करना चाहिए। मार्क्सवाद ने हमेशा यह माना है कि जनता

(शेष पृष्ठ 10 पर)

तुम्हारे सदाचार की क्षय

• राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेहनीड़ों में बैठे कागज पर रोशनाई फिराया करते हैं। राहुल सांकृत्यायन हमेशा जनता के संघर्षों का मोर्चा हो या सामन्तों-जमीन्दारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मार्चा हो, वह हमेशा अगली कतारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएं झेलीं। जमीन्दारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला भी किया लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी कलम रुकी। राहुल सांकृत्यायन यूरोपीय पुनर्जागरण काल के उन महामानवों सरीखे महामानव थे जो एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में तलवार लेकर लड़ते थे।

दुनिया की छत्तीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्‌भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन पुरातत्व, नृतत्वशास्त्र, साहित्य,भाषा, विज्ञान आदि विषयों पर वह अधिकारपूर्वक लिखते थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, ललित निबन्ध, जीवनी, आत्मकथा, डायरी आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अधिकारपूर्वक लेखनी उठायी। वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों, बाइसवीं सदी आदि पचास से अधिक रचनाएं उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपने आप करा देती हैं।

लेकिन राहुल ज़ी के लिए ज्ञान कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी और न ही वे विद्वान कहलाने के लिए लिखते थे। देश की शोषित-उत्पीड़ित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आजाद कराने के लिए कलम को वह हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी हैं वह सिपाही भी है और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन और कर्म एक सतत प्रवाहमान धारा के समान था। गति उनके लिए जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध एवं मृत्यु जड़ता। इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। यह अकारण नहीं था कि घुमक्कड़ी उनके स्वाभाव में रच-बस गयी थी। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ भूगोल की पहचान करना नहीं थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व उसकी संस्कृतियों से उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राएं करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं-परम्पराओं के खिलाफ उनका मन गहरी नफरत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके खिलाफ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। जनता के ऐसे ही सच्चे सपूत महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तिका 'तुम्हारी क्षय' बिगुल के पाठकों के लिए हम धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। किन्हीं कारणों से पिछले अंक में इसे प्रकाशित नहीं किया जा सका था। इस अंक से इसका अंगला भाग प्रकाशित किया जा रहा है। राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रूढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है।

-सम्पादक

असत्य

सत्य-भाषण की ओर धर्म और समाज जोर दे रहा है, और मैं मानता हूँ कि वह उतना मुश्किल नहीं है, यदि समाज में अधिक कृत्रिमता न हो, तो भी सत्य-भाषण आजकल कितना कठिन काम है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस कठिनाई की जवाबदेही है अधिकतर हमारे समाज की वर्तमान बनावट पर, जिसमें सत्यवक्ता के लिए स्थान नहीं है। हमारी राजनीतिक संस्थाएँ असत्य-प्रचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। झूठ का प्रयोग होता है लोगों को धोखा देने में। अपने स्वार्थ के लिए झूठ बोलकर दूसरे को धोखा देना हर एक राष्ट्र और राजनीतिज्ञ अपना परम कर्तव्य समझता है। राजनीतिक कोश में मानो झूठ बोलना पाप में गिना नहीं जाता। हमारे धर्म और समाज का सत्यभाषण पर इतना जोर व्यर्थ है, जब दूसरी ओर वही व्यक्तियों को झूठ बोलने के लिए मजबूर करता है। स्कूल में एक लड़का दवात तोड़ देता है। यदि वह तोड़ना स्वीकार करता है, तो उसे दण्ड और भर्त्सना सहने के लिए मजबूर होना पड़ता है और झूठ बोल देता है तो साफ छूट जाता है। मारपीट और दूसरे अपराधों में भी झूठ बोलने वाले ही नफे में रहते हैं, फिर कौन सत्य बोल कर दण्ड भोगने के लिए तैयार होना चाहेगा? ईमानदारी से काम करके आजकल पेट भर खाना मिलना मुश्किल है। सच बोलकर लोगों की मैत्री प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए तो आदमी झूठ बोलने पर उतारू होता है। आजकल की बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ, बड़े-बड़े पद, ऊँचे-ऊँचे सम्मान झूठ बोलने की निपुणता के लिए पारितोषिक हैं, कहने के सदाचार और हैं, करने के और। जब तक सारे समाज के सम्बन्ध में यह बात है, एक अकिंचन व्यक्ति अपने को कैसे उससे बचा सकता है? कितनी ही जंगली जातियाँ हैं जो पूँजीवादी सभ्यता और संस्कृति में इससे नीची समझी जाती हैं, लेकिन उनमें झूठ बहुत कम देखा जाता है। इसका मतलब है कि यह सभ्यता और संस्कृति उन्नत होकर हमारे समाज को सत्य के सम्बन्ध में और नीचे ले जाती है। हमारे समाज ने ढोंग, आत्मवंचना को जितना ही अधिक आश्रय दिया है, उतना ही हर एक व्यक्ति अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करने में असमर्थ है, समाज का हर एक व्यक्ति अपने लिए तो नहीं चाहता, लेकिन दूसरे को जैसे हो तैसे धोखा देकर अपना काम बनाना चाहता है। किसी का किसी के ऊपर पूरी तरह से विश्वास नहीं, इसका परिणाम हो रहा है–स्त्री पुरुष को वंचित करना चाहती है और पुरुष स्त्री को, पिता पुत्र को धोखा देना चाहता है और पुत्र पिता को। आखिर इस प्रकार की वंचना, अराजकता का जिम्मेवार कौन है? हमारा समाज।

चोरी-रिश्वत

पुराने जमाने में चोरी के लिए लोगों का हाथ काट दिया जाता था, जान ले ली जाती थी। आजकल सजाएँ कुछ हल्की हैं, लेकिन तब भी समाज की दृष्टि में चोरी भारी पाप समझी जाती है। उसके लिए सख्त कानून और जबर्दस्त जेलखाने बने हैं। सरकार लाखों रुपया पुलिस पर खर्च करती है। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पाने वाले जज और मजिस्ट्रेट इसके लिए नियुक्त किये गये हैं। लेकिन क्या इसमें यथेष्ट रोकथाम है? जिन लोगों को चोरी बन्द करने का काम मिला है, यदि वे खुद वही काम करते हों, तो उनके किये चोरी कैसे बन्द होगी? पुलिस चोरों को पकड़ने और चोरी रोकने के लिए अपने को जिम्मेदार समझती है, लेकिन चौकीदार और कांस्टेबल ही नहीं, थानेदार, इंस्पेक्टर और ऊपर के अफसर तक हाथ गरम कर देने पर तरह दे देते हैं। सभी लोग जानते हैं कि सौ में नब्बे थानेदार रिश्वत लेते हैं, देहात में किससे यह बात छिपी हुई है? पुलिस कुछ चोरों को पकड़-पकड़ कर जेल में भेजती जरूर है, लेकिन क्या कभी किसी ने यह हिसाब लगाया है कि कितने असली अपराधियों को उसने रुपया लेकर छोड़ दिया? जनता की सरकार के कायम होने पर भी हम पुलिस के इस रवैये में कोई फर्क नहीं देखते। जब तक इस तरह रिश्वत का बाजार गर्म है, तब तक चोरी कैसे रुक सकती है? ख्याल करने की बात है कि जिन लोगों को अपने परिवार की परवरिश के लिए काफी रुपया हर महीने मिल जाता है, यदि वे अवैध आमदनी से हाथ हटाना नहीं चाहते तो भूख की पीड़ा से पीड़ित होकर चोरी करने वाले अपने को कैसे रोक सकेंगे?

जेलों में अपराधी चालचलन सुधारने के लिए भेजे जाते हैं। किसी समय दण्ड का अभिप्राय यंत्रणा से अपराधी को भयभीत करना था, लेकिन आज की सभ्यता की दुनिया सजा और जेल को सुधार करने का मौका देना समझती है। इन जेलों की क्या हालत है? कैदी जाकर वहाँ देखता है कि छोटे सिपाही से लेकर सुपरिटेण्डेण्ट तक कैदियों के भाग में से कुछ न कुछ जरूर अपने इस्तेमाल में लाते हैं। तीन मन चावल में आधा मन निकाल लिया जाता है। आटे में चोकर और मिट्टी भी डाल दी जाती है। अच्छी तरकारियाँ अफसरों की डालियों के लिए सुरक्षित रखी जाती हैं और मामूली तरकारी में से भी अच्छा भाग दूसरे ले जाते हैं और कैदियों के हिस्से में सिर्फ घास और पत्ता पड़ता है। तेल, दूध, घी, गुड़ सभी खाद्य वस्तुओं में इस तरह की लूट है। सिगरेट और तम्बाकू को वर्जित कर सरकार कैदियों को संयम का पाठ पढ़ाना चाहती है, लेकिन उसका परिणाम सिर्फ इतना ही है कि पैसे वाले कैदियों को ये चीजें कुछ महँगी पड़ती हैं। वस्तुतः जिस कैदी के पास रिश्वत देने के लिए पैसा है, उनके लिए जेल में सब तरह का प्रबन्ध हो जाता है। इस तरह के वातावरण में खाक सुधार होगा?

तुम्हारे न्याय की क्षय

हमेशा से न्याय करने का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। समाज और उसके नेता धनिकों की तरफ से गरीबों पर कितना अन्याय होता है, इसके बारे में हम कह आये हैं! दुनिया की सरकारें कितना न्याय कर रही हैं, इसे जरा देखना है। आजकल की सरकारें न्यायालयों और कानून बनाने पर बहुत ध्यान देती हैं और कहा जाता है कि यह सब इसीलिए कि जिसमें सबको न्याय पाने में सुभीता हो। क्या गरीबों को न्याय पाने का सुभीता है? जिस वक्त न्यायालय नहीं थे, सिर्फ पंचायतें थीं, जिस वक्त कानून नहीं थे, सिर्फ व्यवहार-बुद्धि निर्णायक थीं, जिस समय वकील नहीं थे, हर आदमी अपना वकील था–उस वक्त गरीब के लिए न्याय पाना अधिक आसान था। कानून न्याय समझने में आसानी नहीं पैदा करते, बल्कि भारी भ्रम पैदा करने का काम देते हैं, उनके कारण स्पष्ट बात भी अस्पष्ट हो जाती है। कहने को तो यह भी कहा जाता है कि कानून अवलम्बित है, व्यवहार-बुद्धि–कामन सेन्स–पर। किन्तु आजकल तो उसका काम व्यवहार-बुद्धि को निकम्मा बना देने का है। सूक्ष्म प्रतिभाएँ जो समाज के हित के काम को कर सकती थीं, आज बाल की खाल उतारती कानून के अर्थ का अनर्थ करने में तत्पर हैं। झूठे मुकदमे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने में ही अच्छे वकील की तारीफ है। आये दिन, दिन-दहाड़े हम सफेद को काला और काले को सफेद होते देखते हैं।

कानून और न्यायालय धनी के विरुद्ध गरीब को न्याय देने में कितने असमर्थ हैं, इसके लिए दूर के दृष्यान्त की जरूरत नहीं। भारत के हर एक गाँव में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। मामूली अपराध की तो बात ही क्या, खून तक पचा लिए जाते हैं। जमींदार या धनी के इशारे पर आदमी मारा गया। धनी आदमी ने रुपयों का तोड़ा खोलकर डाक्टर के सामने रख दिया। डाक्टर समझता है, दस बरस में जो कमायेंगे, वह सामने रक्खा है, घर आयी लक्ष्मी को ठुकराना नहीं। लिख देता है–दिल कमजोर था, चोट साधारण थी, आदि, और, मामला दूसरे से दूसरा हो जाता है। बहुत बार तो लाश को ले जाकर तुरन्त जला दिया जाता है और फिर भय और प्रलोभन से गवाहियाँ अपने पक्ष में बना ली जाती हैं। अक्सर गरीब आदमी अदालत तक नहीं जाते। अगर धनियों द्वारा किए गये तीन खून किसी थानेदार को मिल जायें तो उसका भाग्य ही खुल जाय। वह इतना रुपया जमा कर ले कि उसकी नौकरी चली भी जाये तो भी वह जिन्दगी भर चैन की वंशी बजाता रहेगा।

बिहार के एक बड़े जमींदार की बात है। उन्हें लाखों की आय है जिसे एक जाली बिल के जरिये उनके बाप ने उनके लिए प्राप्त किया। उस वक्त वे बिल्कुल तरुण थे। एक स्वजातीय गरीब लड़का उनके पास रहा करता था। एक दिन किसी बात में नाराज तरुण जमींदार ने उस लड़के पर पिस्तौल दाग दी। लड़का वहीं ढेर हो गया। लाश फुँकवा दी गई और थाने के दरोगा को बुलाकर एक भारी रकम उनके सामने पेश की गई। उस रुपये की राशि को देखकर थानेदार की आँखें चमक उठीं। पीछे वही थानेदार असहयोग में नौकरी से इस्तीफा दे राष्ट्रीय युद्ध में शामिल हो गये थे। बहुत वर्षों तक हम दोनों साथ काम करते थे। वह बतलाते थे कि कैसे रात हो। रात उन्होंने मृत लड़के के बाप के गाँव में जाकर वहाँ उसके सम्बन्धियों को पट्टी पढ़ाई। किस प्रकार ऊपर और नीचे के अफसरों में रुपये बाँट कर कानून और न्याय को अंगूठा दिखाया। खून हुआ है, इसकी खबर तक अदालत में नहीं पहुँचने पाई। जिस तरुण ने अपने साथ खेलने वाले लड़के को इस तरह पिस्तौल का निशाना बनाया, वह साधारण अपराधी दिमाग का व्यक्ति नहीं हो सकता है। यदि वह गरीब घर में पैदा हुआ होता, तो खून के कारण फाँसी पड़ने से यदि बच भी जाता, तो उसका स्थायी निवास प्रान्त के बड़े-बड़े जेलखानों में जन्मजात अपराधियों में तो जरूर होता, लेकिन आज वह व्यक्ति प्रान्त के बड़े प्रभावशाली धनिक अगुवों में है।

एक-दूसरे धनी जमींदार की बात है। वह अपने रोब-दाब के लिए पास-पड़ोस के बहुत से गाँवों में मशहूर थे। कहने को तो हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का राज है, लेकिन जहाँ तक उनकी जमींदारी का सम्बन्ध था, अंग्रेजी शासन का नम्बर उनके बाद आता था। मामूली मारपीट ही नहीं, बड़े-बड़े मुकदमों तक का फैसला वे जुर्माने लेकर कर दिया करते थे और किसकी शामत आती कि उनके फैसले के खिलाफ थाने तक भी जाने की हिम्मत करता। उनके गाँव में एक आदमी ने एक मैना पाला था। मैना आदमी की बात बोलता था। इसकी खबर जमींदार साहब को लगी। झट मैना माँग लाने को आदमी भेजा गया। गरीब ने दुनिया के अनुभव से बहुत शिक्षा नहीं ली थी। अपने प्रिय पालतू पशु-पक्षी में आदमी का पुत्रवत् स्नेह हो जाता है। उसी स्नेह से अन्धा होकर उसने मैना को देना नहीं चाहा। यह खबर जब जमींदार को मिली तो वह आग बबूला हुआ। तुरन्त उसने एक पहलवान सिपाही उसे मार कर मैना छीन लाने के लिए भेजा। सचमुच गरीब को जान से खतम कर मैना पकड़ मँगाया गया। मुकदमा अदालत तक गया तो जरूर, लेकिन जमींदार साहब को एक दिन की हवालात तक की हवा खाने की नौबत न आई।

मगध प्रान्त–पटना-गया जिलों–के जमींदार अपने अत्याचार के लिए सारे बिहार में प्रसिद्ध हैं। वहाँ के एक जमींदार का संकल्प था कि जहाँ तक हो सके, उनकी जमींदारी में किसी किसान के नाम काश्तकारी न लगने पाये। वह अपने हर गाँव में झूठे मुकदमे चला, मारपीट और दूसरे जरियों से लोगों को तंग करके उन्हें काश्तकारी से इस्तीफा देने को मजबूर करते थे। उनके एक गाँव–जिसका नाम अब दूर तक प्रसिद्ध हो गया है–के प्रायः सभी किसान काश्तकारी से हाथ धोकर जमींदार के शिकमी रैयत बन चुके थे। उस गाँव में एक किसान का घर था जिसके पास खाने-पीने के लिए काफी खेत और धन था और परिवार में कई काम करने वाले जवान व्यक्ति भी थे। जमींदार को इस परिवार को परास्त करने में कई बार मुँह की खानी पड़ी। इस पर उसने प्रतिज्ञा की कि उस परिवार को तबाह करके उसके घर पर रेंड़ न बोआएँ तो नाम नहीं। अबकी बार किसी दूसरे गाँव से एक मरणासन्न आदमी लाकर उस गाँव में मरवाया गया और उस परिवार के व्यक्तियों पर खून का मुकदमा चलाया गया। डाक्टर ने रिपोर्ट दी कि जानबूझकर सही-सलामत आदमी का खून किया गया है। पुलिस ने "प्रत्यक्षदर्शी" गवाहों के बयान लिये। घर के सभी सयाने पुरुष जेल में बन्द कर दिये गये। मुकदमा लड़ने में घर की सम्पत्ति स्वाहा हो गई। आदमियों को लम्बी-लम्बी कैद की सजाएँ हुईं। घर में सिर्फ स्त्रियाँ रह गई थीं और उनमें से भी अधिकांश भूख और बीमारी के कारण कुछ ही वर्षों में चल बसीं। मकान मरम्मत के बिना गिर पड़ा और उसके ऊपर बोए रेंड़ को कुछ साल बाद मैंने खुद अपनी आँखों देखा।

यह है आज के कानून की करामात और आज के न्याय का नमूना।

न्याय सस्ता और सुलभ नहीं है, बल्कि जबर्दस्त शत्रु के मुकाबले में वह दुनिया की सबसे महँगी चीज है। वह इतनी खर्चीली चीज है कि धनी आदमी हारते-हारते भी गरीब को उजाड़ देता है। बिना स्टाम्प का पैसा दिये तो गरीब अदालत में दरखास्त भी नहीं दे सकता। और, फिर स्टाम्प ही तो काफी नहीं है? वहाँ चाहिए वकील और मुख्तार को फीस, पेशकार और सरिस्तेदार को नजराना, अर्दली और चपरासी को भेंट। जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी बड़े-बड़े वकीलों को

(शेष पृष्ठ 10 पर)

'मैग्नेसाइड व मिनरल्स लि.' की बन्दी के शिकार मजदूरों की मौत का जिम्मेदार कौन है?

(बिगुल प्रतिनिधि)

पिथौरागढ़। अप्रैल महीने का शुरुआती दिन था, जब हरीराम ने आत्महत्या कर ली। उसके कुछ दिनों पहले ही उसकी पत्नी ने भी मौत को गले लगा लिया था। हरीराम उन 300 मजदूरों में से ही एक था जो पिथौरागढ़ के चण्डाक में स्थित 'मैग्नेसाइड एण्ड मिनरल्स लिमिटेड' में काम करता था और पिछले 5 वर्षों से बन्दी के कारण दवा और पैसे के अभाव में घिसट-घिसट कर जिन्दगी जी रहा था। इस उम्मीद में कि या तो फिर से यह माइन्स शुरू होगी या फिर वेतन व मुआवजा मिल जाएगा। समय बीतने के साथ नाउम्मीद व निराश चार-पाँच मजदूर पहले भी आत्महत्या कर चुके हैं और कुल मिलाकर 10-11 मजदूरों की असामयिक मृत्यु हो चुकी है।

पिथौरागढ़ में निजी क्षेत्र के दोनों मैग्नेसाइड कारखाने दो दशक तक मजदूरों का खून निचोड़ने के बाद बन्द हो चुके हैं और इनके मालिक मजदूरों का बकाया रकम भी हड़पकर यहाँ से फरार हो चुके हैं। 45-50 वर्ष की औसत उम्र वाले यहाँ के मजदूर अपनी ढलती उम्र में कुछ पाने की जद्दोजहद में लगे हुए हैं और संघर्षरत हैं।

सेठ झुनझुनवाला ग्रुप के 'मैग्नेसाइड एण्ड मिनरल्स लि.' माइन्स व कारखाना 1978 से बन्द है। उस वक्त प्रबन्धन यहाँ की यूनियन से साँठ-गाँठ करते हुए मजदूरों को धोखा देकर फरार हो गया। उस वक्त यहाँ 300 नियमित मजदूर, 14 दैनिक वेतन भोगी व 35 स्टाफ आफिसर काम करते थे। कम्पनी पर मजदूरों का 200 करोड़ रुपया बकाया था। यही नहीं, उसने मजदूरों के ई.पी.एफ. खाते के 52 लाख रुपये भी हड़प लिए। जबकि खेतना ग्रुप के 'हिमालयन मेग्नेसाइड एण्ड मिनरल्स' की दीवारें तक अब गायब हो चुकी हैं।

'मैग्नेसाइड एण्ड मिनरल्स लि.' के प्रबन्धन ने साजिशाना तरीके से 13 जुलाई 1998 को एक नोटिस देकर इसे बन्द कर दिया जिसे श्रमविभाग ने अवैधानिक घोषित कर दिया था। लेकिन प्रबन्धन अपनी कार्रवाइयों में लगा रहा और उसने 5 मार्च' 99 को 83 नियमित मजदूरों को निष्कासित भी कर दिया। यहाँ की एकमात्र वर्कर्स यूनियन ने इस मामले से अपना पल्ला झाड़ लिया। इसके बाद यहाँ के मजदूरों ने एक संघर्ष समिति बनाई और संघर्ष को आगे बढ़ाया। उसने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से लेकर शासन-प्रशासन-सरकार सबके पास गुहार लगाई। इस प्रक्रिया में अप्रैल 2000 में यह मामला बी.आई.एफ.आर. के पास चला गया और फिर 9 नवम्बर 2000 से यह पूरी फैक्ट्री व माइल्स 'पिकप' के संरक्षण में चली गयी। 'पिकप' ने सन 2001 में एक आक्शन कमेटी भी बनायी। लेकिन मामला वही 'ढाक के तीन पात' है।

यहाँ काम करने वाले पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल आदि प्रान्तों के ज्यादातर मजदूर काम की तलाश में कहीं और जा चुके हैं जबकि स्थानीय व अन्य बचे मजदूर ठेला व फड़खोखा आदि लगाकर गुजर-बसर कर रहे हैं और कुछ पाने की उम्मीद में संघर्षरत हैं। यहाँ के मजदूरों के संघर्ष में कुछ दूसरी यूनियनों के लोग भी शामिल हैं।

संघर्ष समिति के संयोजक सी. एफ. अवस्थी का कहना है कि हमने अपनी पूरी जिन्दगी माइन्स के इस खतरनाक काम में खपा दी लेकिन मालिक ने ऐसे वक्त में हमे धोखा दिया जब हम कहीं और काम करने लायक नहीं रह गये। उनका कहना हैं कि सरकार हो या डी.एम.ए.एल.सी. अथवा अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन सभी मानते हैं कि हमारे साथ अन्याय हुआ है, लेकिन मालिक के सामने वे अपनी विवशता प्रकट करते हैं। अब तो उन्होंने आश्वासन तक देना बन्द कर दिया है। उनका मानना है कि हमारे साथियों की आत्महत्या और मौत की जिम्मेदार वे सब हैं, जो हमारी इस हालत के जिम्मेदार हैं। उनका कहना है कि जब उत्तरांचल नया राज्य बना तो हममें उम्मीद की एक नयी किरण जगी। भाजपा व कांग्रेस दोनों की सरकारें बनीं। लेकिन वक्त गुजरने के साथ उम्मीद की यह किरण भी बुझ गयी। लेकिन हमारा संघर्ष आज भी जारी है।

इस पूँजीवादी निजाम में मुनाफे की अन्धी हवस ने मजदूरों को महज एक उपकरण बना दिया है। वे मजदूरों के खून-पसीने को सिक्के में ढालकर उन्हें निढाल छोड़ देते हैं। इन मुनाफाखोरों का बस चले तो वे मजदूरों की हड्डियों को पीसकर व सुरमा बनाकर इसे भी बाजार में बेच सकते हैं। इनके हर कुकृत्य की रक्षा के लिए सरकारें व उनका प्रशासनिक अमला खड़ा रहता है जिनके लिए मजदूरों की मौत से ज्यादा मुनाफाखोरों की हिफाजत महत्वपूर्ण है।

आज जसपुर-काशीपुर के पास पाँच वर्ष से बन्द कताई मिल मजदूरों की मौत का सवाल हो या पिथौरागढ़ के माइन्स के मजदूरों की मौत का, पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी यानी सरकारों के लिए महज आम बात बनकर रह गयी है।

'सही विचार आखिर कहाँ से आते हैं'

माओ त्से-तुङ

सही विचार आखिर कहाँ से आते हैं? क्या वे आसमान से टपक पड़ते हैं? नहीं। क्या वे हमारे दिमाग में स्वाभाविक रूप से पैदा हो जाते हैं? नहीं। वे सामाजिक व्यवहार से, और केवल सामाजिक व्यवहार से ही पैदा होते हैं; वे तीन किस्म के सामाजिक व्यवहार से पैदा होते हैं–उत्पादन-संघर्ष, वर्ग-संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोग से पैदा होते हैं। मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व ही उसके विचारों का निर्णय करता है। जहाँ एक बार आम जनता ने आगे बढ़े हुए वर्ग के सही विचारों को आत्मसात कर लिया, तो ये विचार एक ऐसी भौतिक शक्ति में बदल जाते हैं जो समाज को और दुनिया को बदल डालती है। अपने सामाजिक व्यवहार के दौरान मनुष्य विभिन्न प्रकार के संघर्षों में लगा रहता है और अपनी सफलताओं और असफलताओं से समृद्ध अनुभव प्राप्त करता है। मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियों–आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा–के जरिए वस्तुगत बाह्य जगत की असंख्य घटनाओं को प्रतिबिम्ब उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। ज्ञान शुरू में इन्द्रियग्राह्य होता है। धारणात्मक ज्ञान अर्थात विचारों की स्थिति में तब छलांग भरी जा सकती है जब इन्द्रियग्राह्य ज्ञान काफी मात्रा में प्राप्त कर लिया जाये। यह ज्ञानप्राप्ति की एक प्रक्रिया है। यह ज्ञानप्राप्ति की समूची प्रक्रिया की पहली मंजिल है, एक ऐसी मंजिल जो हमें वस्तुगत पदार्थ से मनोगत चेतना की तरफ ले जाती है, अस्तित्व से विचारों की तरफ ले जाती है। किसी व्यक्ति की चेतना या विचार (जिनमें सिद्धान्त, नीतियाँ, योजनाएँ अथवा उपाय शामिल हैं) वस्तुगत बाह्य जगत के नियमों को सही ढंग से प्रतिबिम्बित करते हैं अथवा नहीं, यह इस मंजिल में साबित नहीं हो सकता तथा इस मंजिल में यह निश्चित करना सम्भव नहीं कि वे सही हैं अथवा नहीं। इसके बाद ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया की दूसरी मंजिल आती है, एक ऐसी मंजिल जो हमें चेतना से पदार्थ की तरफ वापस ले जाती है, विचारों से अस्तित्व की तरफ वापस ले जाती है, तथा जिसमें पहली मंजिल के दौरान प्राप्त किये गये ज्ञान को सामाजिक व्यवहार में उतारा जाता है, ताकि इस बात का पता लगाया जा सके कि ये सिद्धान्त, नीतियाँ, योजनाएँ अथवा उपाय प्रत्याशित सफलता प्राप्त कर सकेंगे अथवा नहीं। आम तौर पर, इनमें से जो सफल हो जाते हैं वे सही होते हैं और जो असफल हो जाते हैं वे गलत होते हैं, तथा यह बात प्रकृति के खिलाफ मनुष्य के संघर्ष के बारे में विशेष रूप से सच साबित होती है। सामाजिक संघर्ष में, कभी-कभी आगे बढ़े हुए वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्तियों को पराजय का मुँह देखना पड़ता है, इसलिए नहीं कि उनके विचार गलत है बल्कि इसलिए कि संघर्ष करने वाली शक्तियों के तुलनात्मक बल की दृष्टि से फिलहाल वे शक्तियाँ उतनी ज्यादा बलशाली नहीं हैं जितनी कि प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ; इसलिए उन्हें अस्थायी तौर पर पराजय का मुँह देखना पड़ता है, लेकिन देर-सबेर विजय अवश्य उन्हीं को प्राप्त होती है। मनुष्य का ज्ञान व्यवहार की कसौटी के जरिए छलांग भर कर एक नई मंजिल पर पहुँच जाता है। यह छलांग पहले की छलांग से और ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि सिर्फ यही छलांग ज्ञानप्राप्ति की पहली छलांग अर्थात वस्तुगत वाह्य जगत को प्रतिबिम्बित करने के दौरान बनने वाले विचारों, सिद्धान्तों, नीतियों, योजनाओं अथवा उपायों के सही होने अथवा गलत होने को साबित करती है। सच्चाई को परखने का दूसरा कोई तरीका नहीं है।

यही नहीं, दुनिया का ज्ञान प्राप्त करने का सर्वहारा वर्ग का एकमात्र उद्देश्य है उसे बदल डालना। अक्सर सही ज्ञान की प्राप्ति केवल पदार्थ से चेतना की तरफ जाने और फिर चेतना से पदार्थ की तरफ लौटने की प्रक्रिया को, अर्थात व्यवहार से ज्ञान की तरफ जाने और फिर ज्ञान से व्यवहार की तरफ लौट आने की प्रक्रिया को बार-बार दोहराने से ही होती है। यही मार्क्सवाद का ज्ञान-सिद्धान्त है, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का ज्ञान-सिद्धान्त है। हमारे साथियों में बहुत से लोग ऐसे हैं जो इस ज्ञान-सिद्धान्त को नहीं समझ पाते। जब उनसे यह पूछा जाता है कि उनके विचारों, रायों, नीतियों, तरीकों, योजनाओं व निष्कर्षों, धारा-प्रवाह भाषणों व लम्बे-लम्बे लेखों का मूल आधार क्या है, तो यह सवाल उन्हें एकदम अजीब-सा मालूम होता है और वे इसका जवाब नहीं दे पाते। और न वे इस बात को ही समझ पाते हैं कि पदार्थ को चेतना में बदला जा सकता है और चेतना को पदार्थ में, हालाँकि इस प्रकार की छलांग लगाना एक ऐसी चीज है जो रोजमर्रा की जिन्दगी में मौजूद रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने साथियों को द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के ज्ञान-सिद्धान्त की शिक्षा दें, ताकि वे अपने विचारों को सही दिशा प्रदान कर सकें, जाँच-पड़ताल व अध्ययन करने और अनुभवों का निचोड़ निकालने में कुशल हो जायें, कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकें, कम से कम गलतियाँ करें, अपना काम बेहतर ढंग से करें, तथा पुरजोर संघर्ष करें, जिससे हम चीन को एक महान और शक्तिशाली समाजवादी देश बना सकें तथा समूची दुनिया के शोषित-उत्पीड़ित लोगों के व्यापक समुदाय की सहायता करते हुए अपने महान अन्तरराष्ट्रवादी कर्तव्य को, जिसे हमें निभाना है, पूरा कर सकें।

मुनाफाखोर, बाजारोन्मुख सामाजिक व्यवस्था की देन है संवेदनहीनता इस अभिशाप से मुक्त होना होगा!

● एम.रंजन

जिस दिन अमेरिकी-ब्रिटिश फौजों ने इराक पर हमला बोला था, उस दिन एक निजी टीवी समाचार चैनल ने एक युद्ध विशेषज्ञ ने कहा कि युद्ध शुरू हो चुका है और सदी के पहले क्रिकेट महाकुम्भ का सेमी फाइनल व फाइनल होना हैं दोनों का सीधा प्रसारण जारी है। देखना यह है कि दर्शक किसकी ओर आकर्षित होते हैं।

वह इराकी जनता के कत्लेआम का तीसरा दिन था और विश्वकप क्रिकेट का फाइनल मैच चल रहा था। प्रायोजकों, सटोरियों और विज्ञापनदाताओं ने दोनों पर पैसे लगा रखे थे। इराक में बीमार बच्चों सहित लोग भारी संख्या में हताहत हो रहे थे, वहां खून की नदियां बह रही थीं, चारों तरफ तबाही का मंजर था और यहां के गली-मुहल्ले-सड़कें सूनी पड़ी थीं। लोग टीवी से चिपके हुए चौकों-छक्कों का आनन्द ले रहे थे और उसी मूड में लोग बीच-बीच में यह भी जान ले रहे थे कि युद्ध कहां तक पहुंचा। दोनों ही जगहों पर दांत साफ करने, पेट ठीक करने से लेकर सौंदर्य प्रसाधन तक के निर्माता अपने-अपने उत्पादों के प्रचार में जमकर होड़ मचा रहे थे।

यह है वैश्वीकरण और संचारक्रान्ति के दौर की निरंकुश, स्वेच्छाचारी, संवेदनहीनता का एकदम ताजा उदाहरण। नरभक्षी साम्राज्यवादियों द्वारा युद्ध और मनोरंजन का खेल जारी था और एक आबादी ठण्डी, बेजान अपने क़मरों में कैद थी। इंसानियत का बाजारीकरण अपने शीर्ष पर था।

अभी पिछले हफ्ते लोनी में एक कारखाना मज़दूर ने गरीबी से तंग आकर अपनी पत्नी और चार मासूम बच्चों को जहर देकर खुद फांसी का फंदा लगाकर परिवार सहित अपनी इहलीला समाप्त कर ली। अखबार के ओने-कोने में दबी यह खबर शायद किसी को उद्वेलित न कर सकी हो। संवेदनहीनता का यह आलम है कि उत्तर प्रदेश में महज तीन हफ्ते के भीतर गरीबी से तंग आकर बाइस लोगों के मौत को गले लगाने की खबरें आई, लेकिन अखबारों में छपे ये अक्षर बेजान साबित हुए, किसी की आंखों में चुभे नहीं। उत्तरांचल राज्य के ऊधमसिंहनगर जिले में बंदी की शिकार जसपुर कताई मिल के 9-10 मज़दूर भुखमरी व बीमारी से असामयिक मौत के शिकार हो चुके हैं लेकिन सरकार-प्रशासन को छोड़िए, ट्रेड यूनियन आन्दोलनों के लिए भी यह कोई मुद्दा नहीं बना।

आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में, संवेदनहीन, अमानवीय सामाजिक पूंजीवादी ढांचे में मुनाफे की हवस और बाजार की अंधी प्रतियोगिता ने आज यह स्थिति पैदा कर दी है। एक जमाना वह था जबकि छोटी-सी ऐसी कोई घटना लोगों को सड़कों पर उतार देती थी। लेकिन आज हृदयविदारक घटनाएं भी लोगों की रूह में कोई हरकत पैदा नहीं कर पा रही हैं।

हालात ये हैं कि पूंजीवादी "उत्कंर्ष" के इस दौर में, जबकि एकतरफ आबादी का एक छोटा सा धनकुबेरों का हिस्सा समृद्धि की मीनारें खड़ा कर रहा है, दुनिया की सारी सहूलियतें उसके पास मुहैया हो रही हैं, उनमें से कुछ अन्तरिक्ष पर पिकनिक मनाने, आराम करने जा रहे हैं तो दूसरी तरफ बढ़ती गरीबी व अंधकारमय भविष्य की दुश्चिन्ता से निराश लोगों द्वारा साल-दर-साल आत्महत्याओं की, पूरे परिवार सहित खुदकुशी की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। नेशनल क्राइम ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में हर पांच मिनट पर एक 'व्यक्ति आत्महत्या करता है और हर साल एक लाख से ज्यादा लोग जिंदगी से निराश होकर मौत का रास्ता अपना रहे हैं। गौरतलब बात यह है कि डेढ़ दशक पूर्व, 1984 में यह संख्या 50,571 थी।

यह है सरकारी आंकड़ों की भयानक तस्वीर। भले ही कोई इसे निराशा और कुण्ठा की अभिव्यक्ति बताये लेकिन पूंजी ने आज जो मनोवृत्ति पैदा की है, वह इस प्रवृत्ति के खिलाफ कहीं कोई उद्वेलन पैदा नहीं होने दे रही है।

वैसे भी, बाजार और मुनाफे की अंधी हवस में पूंजीपतियों द्वारा खाने-पीने में जहर बेचा जाना आम बात बन चुकी है। अभी पिछले दिनों नहीं बोतलबंद पानी में कीटनाशक दवाइयों के मिश्रण का खुलासा हुआ। यही नहीं, फसलों में प्रयोग होने वाले घातक कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग ने सभी खाद्य पदार्थों-फल, सब्जियां, दूध-दही-घी से लेकर पीने के सामान्य पानी तक को दूषित कर रखा है। 19 वर्ष पूर्व 1984 में सरकार ने एक जांच समिति बनाई थी जिसका विषय था–'कीटनाशक रसायनों के घातक प्रभाव से देश में होने वाली मौतें'। काफी माथापच्ची के बाद समिति ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उसमें लिखा था कि 'बढ़ती हुई आबादी का पेट भरने के लिए इनका इस्तेमाल जरूरी है'।

यह संवेदनहीनता का एक और

(शेष पृष्ठ 10 पर)

मई दिवस का एक नया 'ट्रेण्ड'

मज़दूरों के त्योहार को छीनने की नापाक साजिशें

(कुमाऊं रिपोर्टर)

इसे विडम्बना कहेंगे या इस दौर का एक और वीभत्स मजाक। जब मंत्री, उद्योगपति और मजदूर विरोधी फैसले देने वाले जज ही मई दिवस के मुख्य अतिथि बन रहे हों। वह भी ऐसे समय में जबकि मज़दूरों पर हर तरफ से हमले बोले जा रहे हैं। यह कोई हृदय परिवर्तन का मामला नहीं है बल्कि मज़दूरों के अपने त्योहार को भ्रष्ट करने की नापाक कोशिश है। तभी तो मज़दूरों को यह समझाया जा रहा है कि वे प्रबंधन से तालमेल बनाकर चलें।

इस बार मई दिवस पर यहां ऐसा ही कुछ हुआ। पंतनगर के आन्दोलनरत मज़दूरों के भयानक कत्लेआम के पच्चीस वर्ष बाद, हत्यारे विश्वविद्यालय प्रशासन ने 'प्रबंधन में कर्मियों की सहभागिता' विषय पर एक गोष्ठी आयोजित की। इसके मुख्य अतिथि थे प्रदेश के श्रममंत्री और अध्यक्षता की स्वास्थ्य मंत्री ने। कार्यक्रम में जिलाधिकारी से लेकर यूनियन नेताओं तक सबने भागीदारी की। कई कर्मचारी भी ''सम्मानित'' किये गये।

श्रम मंत्री ने मज़दूर और प्रबंधन को 'एक गाड़ी के दो पहिए' बताते हुए उनमें 'सामंजस्य' बिठाने पर जोर दिया। असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की दुर्दशा पर घड़ियाली आंसू बहाते हुए उन्होंने उनकी 'बेहतरी' के लिए श्रमिक जीवन बीमा लागू करने की घोषणा की। स्वास्थ्य मंत्री ने 'बापू के देश में मज़दूर आन्दोलनों के माध्यम से हानि पहुंचाने की प्रक्रिया में बदलाव' की अपेक्षा की।

गौरतलब है कि पंतनगर में यह कार्यक्रम ऐसे समय में हुआ है जबकि यहां के मज़दूर एक बार फिर भयानक शोषण-उत्पीडन और ठेकाकरण आदि की मार झेल रहे हैं। यूनियनों द्वारा हड़ताल की नोटिस दी जा चुकी है, जबकि सरकारी आदेश से प्रशासन ने यहां छह माह तक हड़ताल पर प्रतिबंध लगा दिया है और सभी छुट्टियां रद्द कर दी हैं। न्यायालय द्वारा परिसर में धरना-प्रदर्शन पर रोक पिछले चार वर्षों से लगी हुई है। फिर भी 'नौ-सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली' की कहावत चरितार्थ करते हुए प्रशासन ने मई दिवस मनाया और यूनियन नेताओं ने इसमें अपनी सहभागिता प्रदर्शित की।

दूसरा आयोजन नैनीताल में हुआ, जिसमें मुख्य अतिथि थे मज़दूर विरोधी फैसलों के लिए चर्चित उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ए.ए.देसाई। न्यायमूर्ति महोदय ने कहा कि यह सच है कि मई दिवस समाजवादी विचारधारा पर आधारित है, लेकिन इसकी महत्ता के लिए विदेशी दार्शनिकों गोर्की व मार्क्स के अध्ययन की जरूरत नहीं है। मार्क्सवाद से खौफजदा जज साहब को क्या मालूम नहीं कि मई दिवस की बुनियाद में ही मार्क्सवाद है? क्या यह भी बताना होगा कि इसकी शुरुआत इस देश से नहीं, अमेरिका से हुई है और इसे अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस के रूप में मनाने का सुझाव मार्क्स के अनन्य मित्र और सहयोगी एंगेल्स ने ही दिया था?

अब यह एक त्रासदी ही तो है कि फुटपाथ पर फड़-खोखा लगाकर पेट पालने वालों को उजाड़ने, घोड़े से यात्रियों व सामान को ढोकर आजीविका चलाने वालों को पुश्तैनी जमीन से बेदखल करने और उन्हें लाठियों से पिटवाने, होण्डा फैक्ट्री में शिफ्टिंग का आदेश देने से लेकर अनेक मज़दूर विरोधी फैसले देने वाला जज मई दिवस का मुख्य अतिथि बना।

ऐसा ही एक अन्य आयोजन काशीपुर में सम्पन्न हुआ। इसके आयोजक थे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के 'कामरेड' और मुख्य अतिथि थे इस क्षेत्र के कुख्यात उद्योगपति और भाजपा विधायक हरभजन सिंह चीमा। इस आयोजन का यहां की कई यूनियनों और संगठनों ने विरोध भी किया और विरोध स्वरूप अलग से कार्यक्रम आयोजित किया। लेकिन रंगुआ सियार ये चुनावी 'काम़रेड' मालिक-मज़दूर में आपसी 'तालमेल' करवाने में ही मस्त रहे। ये बेशर्म पिछले वर्ष से ही ऐसा करते आ रहे हैं।

मई दिवस के इस मुख्य अतिथि की अपनी गुण्डा-वाहिनी है। वह अपने कारखानों में मज़दूरों को 12-12 घण्टे खटाने, उनको बात-बात में पीट देने के लिए कुख्यात है। इसके कारखानों में इसका खुद का कानून चलता है। यही नहीं, यह दूसरे कारखानों में भी यूनियन बनाने के प्रयासों को कुचलने पर आमादा रहता है। और फिर बेशर्मी देखिये कि मई दिवस पर मालिक-मज़दूर में 'सामंजस्य' बिठाने की बात करता है।

बात महज इस क्षेत्र की नहीं है। यह तो बानगी मात्र है ऐसी ही स्थिति पूरे देश में बन रही है। मई दिवस मनाने का यह नया 'ट्रेण्ड' गौरतलब है। आज की लुटेरी व्यवस्था बड़े ही शातिराना ढंग से मई दिवस के संघर्ष की धार को कुंद करने की नापाक कोशिश कर रही है। चुनावी वामपंथी इन साजिशों में भागीदार बनकर अपना चरित्र लगातार उजागर करते जा रहे हैं।

मजदूर वर्ग ने अपने अनगिनत साथियों और नेताओं का खून देकर अपना एक दिन हासिल किया है। यह दिन मजदूरों के संघर्ष का, उनकी एकजुटता का दिन होता है। इसे कलंकित करने की सारी कोशिशों को नाकाम करने के लिए मजदूर वर्ग को एकजुट होना होगा।

मुनाफाखोर, बाजारोन्मुख सामाजिक व्यवस्था की देन है संवेदनहीनता....

(पृष्ठ 9 का शेष)

जीता-जागता उदाहरण था। मुनाफाखोरों की हवस का एक और रूप। सरकार मुनाफाखोरों के हित पर तो कहीं चोट नहीं पहुंचा सकती थी, अलबत्ता ठण्डे तरीके से उसका गुणगान अवश्य कर सकती है।

एक और ताजा उदाहरण सामने है। सुखियों में है कि दुनिया का एक हिस्सा सार्स (किलर निमोनिया) जैसी भयानक बीमारी की चपेट में है। यह मुमकिन है कि बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों की यह कोई नई चाल हो। बहरहाल, भारत के विमान पायलटों ने समुचित सुरक्षा के बगैर सार्स प्रभावित देशों में जहाज ले जाने से मना कर दिया और हड़ताल पर चले गये। लुटेरे पूंजीपतियों के लिए यह नुकसानतलब था। तो संवेदनहीन सरकार ने पायलटों का ही दमन शुरू कर दिया।

आज समाज में बढ़ती संवेदनहीनता के ये विविध रूप हैं। आज यह विकट सवाल उनके लिए एक जिन्दा प्रश्न है जिनकी संवेदनाएं अभी मरी नहीं हैं, जो रीढ़ विहीन केंचुए की तरह घिसट-घिसट कर जीना नहीं चाहते, जिनके चमड़े गैंडे की तरह मोटे नहीं हो गये हैं। यह तय है कि एक बेहतर संवेदनशील और मानवीय सामाजिक ढांचे में ही इस अभिशाप से मुक्ति मिल सकती है। लेकिन ऐसे समाज के निर्माण के लिए आज लुट रहे, पिस रहे, दमित हो रहे लोगों की संवेदना को उभारना जरूरी है।

तुम्हारे सदाचार की क्षय

(पृष्ठ 8 का शेष)

बड़ी-बड़ी फीस देकर रख लेता है। यदि तुमने किसी टुटपुँजिया वकील को खड़ा किया तो बने मुकदमे के भी बिगड़ जाने की सम्भावना हो जाती है। घर, जमीन बेचो, जेवर बन्धक रखो, जैसे भी हो रुपया खर्च कर मुकदमे की पैरवी करो। अगर मुकदमा दीवानी में है और एक ही है तो फौजदारी मुकदमों की तो संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। मारपीट, चराई आदि के कई मुकदमे साथ-साथ ही फौजदारी अदालत में भी चल रहे हैं। मुन्सिफ़ के यहाँ से यदि फैसला पक्ष में हुआ तो सब-जज के यहाँ अपील हुई। वहाँ से भी यदि किस्मत ने मदद क़ी तो हाईकोर्ट और इसके बाद प्रिवी काउंसिल। फौजदारी मुकदमे अलग चल रहे हैं। यदि हर इजलास में खर्च करने के लिए तुम्हारे पास रुपया नहीं है तो तुम्हारी जीत भी हार में बदल जाती है।

यह तो हुआ तब, जब कि हाकिम लोग ईमानदार हों, लेकिन आजकल के हाकिम में कितने हैं जो जल्द से जल्द धनी बनना पसन्द नहीं करते? जिसे ढाई सौ माहवार तनख्वाह मिलती है, वह भी चाहता है पास में मोटर रखना, वह भी चाहता है कि वह और उसकी स्त्री शाहाना ठाठ में रहें, उसके लड़के-लड़कियाँ शाहजादों-शाहजादियों के कान काटें, उसके महल में राजमहल का समाँ दिखाई पड़े, उत्सव और त्योहारों में वह शाहखर्ची का जबर्दस्त सबूत दे सके, बच्चों के पढ़ाने-लिखाने में खर्चीले स्कूल और कालेजों की तलाश करे, ब्याह-शादी में बड़े-बड़े तिलक-दहेज दे और दोनों हाथों अशर्फियाँ लुटाये, उसकी पार्टी में बड़े से बड़े हाकिम और रईस शामिल हों जिनके लिए देशी और विलायती सब तरह के सुन्दर से सुन्दर भोजन परोसे जायें। आजकल के हमारे हाकिमों की जब ये हार्दिक लालसाएँ हैं, तो रुपये की चमचमाहट उन्हें क्यों न अपनी ओर आकर्षित करेगी? अगर किसी को रिश्वत लेने में संकोच होता है तो या तो इसलिए कि वह कम है अथवा भेद छिपा लेने में कठिनाई होगी। अनौचित्य के ख्याल से रिश्वत से बाज आने वाले लोग बहुत मुश्किल से मिलते हैं। जिलों के छोटे-मोटे अधिकारियों की तो बात ही छोड़ दीजिए, हाईकोर्ट के जज तक रिश्वत लेते पाये गये हैं और इसे मुकदमा लड़ने वाली जनता खूब जानती है। छोटे और बड़े लाटों तक को घुड़दौड़ के घोड़े, कीमती हार तथा दूसरी बड़ी-बड़ी भेंटों को देकर अपना काम बनाया गया है। एक रियासत के खिलाफ कई जबर्दस्त प्रमाण जमा हो गये थे। रिकार्ड के अधिकारी को इकट्ठा कुछ लाख रुपये दे दिये गये और दूसरे दिन देखा गया कि वे सारे प्रमाण गायब हैं।

राज तो आजकल है थैली का। शासन पर अनुशासन उसका है जिसके पास धन है। कानून बनाने वाले वे ही हैं जिनके पास तोड़ हैं। इंग्लैण्ड के थैली वाले हिन्दुस्तान के मालिक हैं। वे कभी ऐसा कानून बनने देना पसन्द नहीं करते जिससे कि उनकी थैली पर हाथ पड़ने पाये। देश ओर विदेश में यातायात के साधन जहाज और रेलें इसी दृष्टि से संचालित की जाती हैं। भारत की रेलों का एक अलग महकमा बना दिया है, यह ख्याल करके कि कहीं भारतीय राजनीतिज्ञों का दबाव उस पर न पड़ने लगे। कानूनों की भरमार है। हर साल हमारे देश में सैकड़ों कानून बनते और सुधरते रहते हैं। लेकिन वह इसलिए नहीं कि मनुष्य ईमानदारी से कमाई अपनी सम्पत्ति का अपने आप उपभोग कर सके। इनका मतलब सिर्फ इतना ही है कि कैसे धनिकों के हित के लिए चलते इस शासन की सहायता के लिए कुछ और काबिल-दिमाग आदमी खरीदे जा सकते हैं? कैसे कुछ और चिल्लाने वाली जमातों का मुँह बन्द किया जा सकता है? काबिल दिमागों को सरकारी बड़े-बड़े पदों पर सिर्फ इसलिए नहीं नियुक्त किया जाता कि वे अपनी योग्यता से जनता को फायदा पहुँचायें, बल्कि इसलिए कि वे चिरकाल से स्थापित स्वार्थों को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहायता करें। सभी जानते हैं कि सरकारी नौकरियों में लोग बड़ी-बड़ी तनख्वाहों और स्थायी जीविका के लिए दौड़ते हैं। यदि सरकारी धन को इंसाफ के साथ वितरण करना ही है तो उसके बड़े हकदार हैं, गरीबों की सन्तानें। लेकिन हम क्या देखते हैं? गरीबों की सन्तानों के लिए तो पहले पढ़ना ही मुश्किल है, पढ़-लिखकर योग्यता प्राप्त करने पर भी बड़ी नौकरियों के लिए अपेक्षित सिफारिशें वे जमा नहीं कर सकतीं। परिणाम यह हो रहा है कि हर तरह की बड़ी-बड़ी नौकरियों में लखपतियों-करोड़पतियों, बड़े-बड़े जमींदारों और राजा-नवाबों के लड़के भरे पड़े हैं। आई.सी.एस.(ICS), आई.पी.एस.(IPS), आई.एम.एस.(IMS) आदि अधिकारियों की सूची को उठाकर देखिये तो मालूम होगा कि देश के धनी, जमींदारों, महाजनों और प्रभावशाली राजनीतिज्ञों के लड़के ही हैं। पिता लाखों का मालिक है, एक रियासत का बड़ा मंत्री है और लड़का सरकार के एक विभाग का सेक्रेटरी। अखिल भारतीय सरकारी अफसरों में ही नहीं, प्रान्तीय बड़ी-बड़ी नौकरियों में भी उन्हीं को जगह मिली है जिनमें अधिकांश के पास जीविका के अन्य स्वतंत्र साधन हैं। जब सरकार के चलाने वाले ये बड़े-बड़े कर्मचारी धनिक श्रेणी से आये हैं तो धनी-गरीब के मामले में वे अपनी श्रेणी के स्वार्थ के विरुद्ध काम करेंगे, यह कब सम्भव हो सकता है? अंग्रेज-अधिकारियों के बारे में पिछले डेढ़ सौ वर्षों का तजुर्बा हमें बताता है कि जहाँ काले-गोरे का सवाल होता है, वहाँ वे न्याय को ताक पर रख देते हैं। कितने ही निरपराध भारतीय अंग्रेजों की ठोकरों और गोलियों के शिकार हुए हैं, लेकिन कितने मुकदमों में खूनी को फाँसी की सजा हुई है? साहब की ठोकर से मरे आदमी की तिल्ली, डाक्टरी जाँच से, बढ़ी पाई गई। यही न्याय का अभिनय हम धनी और गरीब के मामले में न्यायाधीश के पद पर आरूढ़ धनिकों की सन्तानों द्वारा किया जाता देखते हैं। जमींदारों और किसानों, मजदूरों और मिल-मालिकों के झगड़े में जो कड़वा तजुर्बा हमें मिल रहा है, उससे मालूम हो रहा है कि उनकी सहानुभूति हमेशा धनिकों की ओर रहती है। मारपीट और बलवे की तैयारी सबसे जबर्दस्त जमींदारों की ओर से होती है। अपनी जीविका के छिन जाने के भय से किसान शान्तिमय तरीके से उसका विरोध करते हैं। लेकिन सभी जगह देखा जाता है कि पुलिस और मजिस्ट्रेट किसान को ही अपराधी ठहराते हैं और इन्हीं के ऊपर दफा 107 या दफा 144 की कार्रवाई की जाती है। आँखों से साफ देखा जाता है

(शेष पृष्ठ 11 पर)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

(पृष्ठ 7 का शेष)

में भरोसा करके, उन पर निर्भर होकर और उनके साथ नजदीकी संबंध कायम रखकर ही प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमिका पूरी तरह निभा सकता है और जनता के समुदायों के लक्ष्य की ओर योगदान कर सकता है। यदि हम व्यक्ति की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर और जनता के समूहों की शक्ति को कम करके देखते हैं, यदि हम इस विश्वास पर अड़े रहें कि हम जो कुछ करते हैं वह सही है और जो कुछ भी जनता करती है वह बेकार है, तो हम जनता और व्यक्ति की जगहों की अदला-बदली कर रहे होंगे, और ऐतिहासिक भाववाद के कीचड़ में धंस रहे होंगे। जहां तक पार्टी की सदस्यता और काडरों का सवाल है, जनता के साथ उचित व्यवहार करने के लिए उन्हें स्वेच्छा से जनता का शिष्य बनना ही चाहिए, विनम्रता से उनसे सीखना चाहिए, उनके द्वारा साधारण मेहनतकश लोगों जैसा दिखना चाहिए, और उनके बीच गहरी जड़ें जमानी चाहिए। पार्टी के काडरों को सामूहिक उत्पादक श्रम में हिस्सा लेना जारी रखना चाहिए, हमेशा के लिए मजदूर वर्ग के लोगों की चारित्रिक विशेषताओं को बचाना चाहिए और अपने आपको जनता के साथ एकरूप कर लेना चाहिए।

जनता के साथ सही ढंग से व्यवहार करने के लिए, हमें यह भी अवश्य जानना चाहिए कि उनका नेतृत्व करने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को सही ढंग से कैसे इस्तमाल किया जाए। कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के लिए जनसमुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखने का अर्थ होता है उससे सीखना; इसका मतलब उसे हथियारबंद और संगठित करने के लिए उनके बीच मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा का प्रचार-प्रसार करना भी होता है। जहाँ तक जनता के साथ व्यवहार की पद्धति का प्रश्न है, एक ओर हमें "नेतृत्व की सर्वज्ञता" और "जनता के पिछड़ेपन" के सिद्धांत से संघर्ष करना चाहिए, नौकरशाहीवाद और निर्देशवाद की बुरी कार्यपद्धति को पराजित करना होगा; और दूसरी ओर, हमें इस लाइन का अवश्य विरोध करना चाहिए: "अगर जनता इसी तरह इस चीज को चाहती है तो यही सही" और पुछल्लावाद की नुकसानदायक प्रवृति को हराना चाहिए। केवल इसी रास्ते से हम अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी लाइन को सही ढंग से लागू कर सकते हैं और पार्टी के काम को उचित रूप से अंजाम दे सकते हैं।

जनसमुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखने के लिए हमें नम्रता, विवेक और कठिन संघर्ष की कार्य पद्धति को लागू करना चाहिए। हर-हमेशा, हम कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को उसी हवा में सांस लेनी चाहिए जिसमें जनता सांस लेती है और उसी नियति का साझीदार होना चाहिए; हम अपने आराम और सुख नहीं ढूंढ सकते और सतत कठिन जीवन से घृणा नहीं कर सकते। यदि हम पदोन्नत भी कर दिए गए हों तो भी हमारी नजर से नम्रता, विवेक और जन समुदाय के साथ नजदीकी संबंध कायम रखने की कार्य पद्धति ओझल नहीं होनी चाहिए; यदि हमारी जीवन-स्थितियां बेहतर हों तब भी हमें कठिन संघर्ष की पद्धति को नहीं त्यागना चाहिए। केवल इसी तरीके से हम बुर्जुआ विचारों और जीवन-पद्धति की भ्रष्टता का कारगर ढंग से विरोध कर सकते हैं और जनता से कभी अलग नहीं हो सकते हैं, ताकि हमारी पार्टी जनसमुदाय के साथ हमेशा वैसा सम्बन्ध कायम रखेगी, जैसा मछली का पानी से होता है, ताकि यह क्रांति और निर्माण में और भी महान जीतें हासिल करें।

(क्रमशः)

पद

• मनबहकी लाल

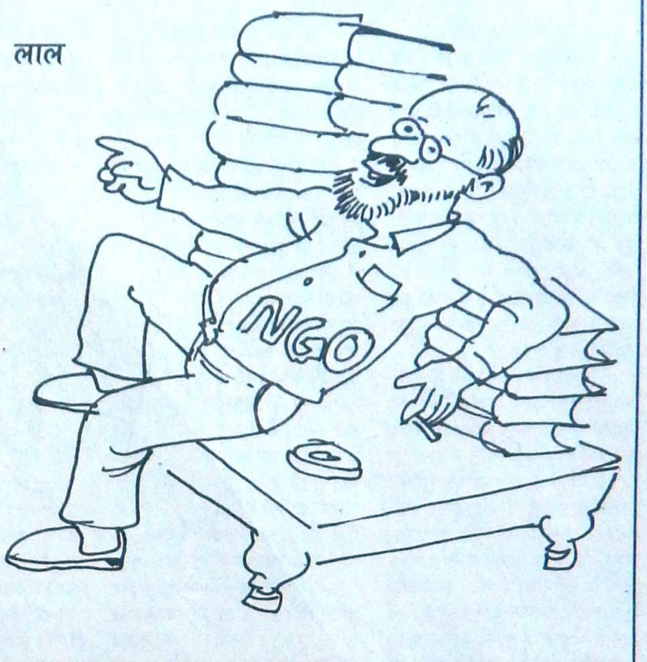

अब लौं नसानी, अब ना नसैंहो।
ओढ़ ज्ञान की काली कमरिया किन्नर देश बसैंहो।
अतिसय कठिन डगर पनघट की घर बादल बरसैंहो।
नियम उलटिकै अब चिन्तन से जीवन को उपजैंहो।
बकबक-बकबक-बकबक-बकबक खूब विचार सुनैहों।
कथनी पर अधिकार जमा, सिद्धान्तकार कहलैंहो।
जब करनी कै बारी चादर तानि तुरत सो जैंहो।
मूरख भटकैं धूल-धुआँ में, हम लाइन गढ़ लैंहो।
एन.जी.ओ. का चुग्गा चुगिकै, जो सिखिहैं, सिखलैंहो।
जब लौं सिक्का चलिहैं तब लौं अनहद राग सुनैंहों।
गगन घटा घहरानी जब झट स्वर्गपुरी उड़ि जैंहो।

तुम्हारे सदाचार की क्षय

(पृष्ठ 10 का शेष)

कि जमींदार ने बलवा करने में कोई कसर उठा नहीं रखी तो भी उसके एक आदमी को भी कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ती।

एक जगह का हमें ताजा तजुर्बा है। जमींदार ने पीढ़ियों से जोतते आते किसानों से उनके खेत को छीनना चाहा। किसान सोचने लगे कि यदि खेत निकल जायेंगे तो बाल-बच्चे जियेंगे कैसे? उन्होंने मार खाकर भी खेत छोड़ना नहीं चाहा। जमींदार ने थाने में रिपोर्ट लिखाई। किसान की रिपोर्ट को थानेदार लिखना नहीं चाहते थे। थानेदार ने जमींदार के पक्ष में होकर कुछ किसानों पर शान्तिभंग का आरोप करके मजिस्ट्रेट को लिख दिया। फौजदारी अदालत को अपना फैसला कब्जे को देखकर देना चाहिए। मजिस्ट्रेट को जमींदार की बातों से सच्चाई का पता लग गया। किसान चिल्लाते ही रह गये कि चलकर देख लिया जाये, खेत पर कब्जा हमारा है। दो सौ-चार सौ बीघे जोतने वाला आदमी चौथाई और पचइयाँ एकड़ में अलग-अलग फसल नहीं बोयेगा। लेकिन मजिस्ट्रेट को वहाँ जाने की जरूरत नहीं मालूम पड़ी, उसने झट उन पर दफा 144 लगा दिया। ऊपर के अफसर ने भी बार-बार प्रार्थना करने पर भी, खेत को देखना पसन्द न किया और मजिस्ट्रेट के फैसले को बहाल रखा। सब तरफ से न्याय का रास्ता बन्द देखकर किसानों ने शान्तिमय सत्याग्रह की शरण ली। दिन मुकर्रर हुआ। पुलिस और हाकिमों को मालूम था कि जमींदार की तरफ से मारपीट की जबर्दस्त तैयारी हो रही है। वे यह भी जानते थे कि किसान हर हालत में शान्त रहना चाहते हैं। उनको यह भी मालूम हो चुका था कि जमींदार के हाथी इस युद्ध में खास तौर से भाग लेने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। निश्चित दिन पर हाथियों के साथ कई सौ आदमी लाठी-गँड़ासे लिये एकत्र हुए। किसानों की ओर सिर्फ थोड़े से निहत्थे सत्याग्रही। जनता को खास तौर से बहुत संख्या में न आने के लिए कहा गया था। किसान सिर्फ ग्यारह खेतों की तरफ बढ़ते हैं। हाथियों और लट्ठधारी जवानों को लेकर जमींदार सत्याग्रहियों पर हमला करने के लिए खेत पर पहुँचता है। पुलिस की अधिक संख्या का वहाँ पता नहीं। गिरफ्तारी के बाद जब सत्याग्रही पुलिस की हिरासत में थे, तब जमींदार के आदमी ने सत्याग्रही पर लाठी-प्रहार किया। सिर से खून की धार बहने लगती है। प्रहार करने वाला आदमी उस वक्त गिरफ्तार कर लिया जाता है, लेकिन थोड़ी देर के बाद सरकारी अधिकारी उसे छोड़ देते हैं। अंधा भी देखकर कह सकता था कि मारपीट की सारी तैयारी जमींदार की ओर से हुई थी। लेकिन उसके एक भी आदमी को न तो पकड़ा जाता है और न उसे वैसा करने से रोका जाता है। उसके लठैत सरकार की ओर से कानून को अपने हाथ में ले लेने के लिए आजाद छोड़ दिये गये थे।

एक-दूसरे जमींदार का किस्सा है जो बतलाता है कि धनिकों के सामने न्याय और कानून की कितनी दुर्गति होती है। वे नहीं चाहते थे कि किसानों को अपने खेत में काश्तकारी का हक मिले। बहुत दिनों से किसान खेत जोतते आ रहे थे। सर्वे में लाख कोशिश करने पर भी काश्तकारी लग ही गई। जमींदार ने मामले-मुकदमे और जोर-जुल्म की तैयारी की। किसान जानते थे कि इतने जबर्दस्त जमींदार से लड़ने में उजड़ जायेंगे, इसलिए अधिकांश ने जा-जाकर अपने इस्तीफे की रजिस्टरी कर दी। मैंने पुलिन्दे के पुलिन्दे उन रजिस्टरी-शुदा इस्तीफों को देखा है और देखते वक्त मैं सोच रहा था कि इन गरीबों के लिए न्याय क्या माने रखता है? यदि जरा भी न्याय पाने का उन्हें भरोसा होता तो अपनी और अपनी सन्तानों की जीविका के साधन इन खेतों से वे इस्तीफा क्यों देते?

जुए को कानून के खिलाफ समझा जाता है। लेकिन घुड़दौड़ की बाजी क्या है? चूँकि उसमें बादशाह तक के घोड़े शामिल होते हैं, इसलिए घुड़दौड़ का जुआ हलाल है। और बड़ी-बड़ी लाटरियाँ क्या जुआ नहीं हैं? छोटे-मोटे जुए तो पुलिस की संरक्षकता में अक्सर होते हैं। बड़े-बड़े जुओं के संरक्षण का भार तो राज्य के सूत्रधारों के कंधों पर है। यही न्याय है? आश्चर्य!

विकास का अर्थशास्त्र

रॉयल इन्स्टीट्यूट लंदन ने विश्व को व्यापक एवं गहन रूप से प्रभावित करने वाले मुद्दों और नीतियों पर कुछ सामान्य निष्कर्षों समेत निबन्ध प्रकाशित किये हैं। इनमें से एक निबन्ध दुनिया में विकास के अर्थशास्त्र पर केन्द्रित है। लेखक पॉल रगमैन एक स्वीकृत अर्थशास्त्री ही नहीं वरन एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। अपने निबन्ध में पॉल रगमैन ने विश्व विकास राजनीति के पाँच चारित्रिक गुणों की पहचान की है :

सबसे पहले वह कहते हैं कि आर्थिक विकास की जानकारी अत्यन्त सीमित है। जैसे अमरीकी प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के दो तिहाई भाग के लिए कोई स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं है। इसी प्रकार एशियाई देशों ने आर्थिक सफलता के लिए जो तौर-तरीके अपनाये, वे विकास के स्थापित रास्ते नहीं हैं। अत: रगमैन का आग्रह है कि समसामयिक रूढ़िवादिता जो कहती है, वही विकास की कुँजी नहीं है। अत: नीति निर्माण में विनम्रता होनी चाहिए तथा झाड़ू फेरने वाली व्यापकता से बचना चाहिए।

दूसरे आर्थिक विकास के निष्कर्ष आधारहीन होते हैं या कमजोर आधारों पर निकाल लिये जाते हैं। निहित स्वार्थों की पूर्ति करने वाले निष्कर्षों का प्रयोग मतानुकूलन के लिए किया जाता है। इसका एक उदाहरण 'वाशिंगटन कंसेन्सस' है।

आर्थिक विकास के 'रीतिगत विवेक' स्थाई नहीं होते हैं। किन्तु मौजूदा 'रीतिगत विवेक' की पोल खुलने के साथ ही इसके प्रस्तावक उसी आत्मविश्वास के साथ एक नये 'रीतिगत विवेक' की नींव रखना शुरू कर देते हैं।

चौथा चारित्रिक गुण यह है कि अतीत के चिन्तन में यह पाया जाता है कि "आर्थिक विकास की नीतियों" ने अपने कथित लक्ष्य में "योगदान नहीं किया" और वे "गलत विचारों पर आधारित" थीं।

अन्तत: बुरे विचार ही ऊपर उठते हैं क्योंकि वे शक्तिशाली समूहों का भला करते हैं।

यह परिघटना एडम स्मिथ के जमाने से कई बार दोहराई जा चुकी है। धनी देशों में यदि इसें प्रभावी दृढ़ता से लागू किया जाता है तो तीसरी दुनिया में इसे एक नृशंस निर्दयता भी शामिल होती है।

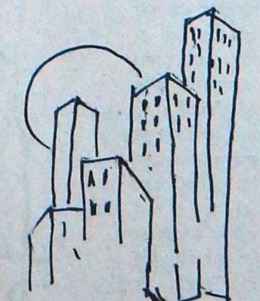

इसका पहला मुख्य प्रयोग भारत में लार्ड कार्नवालिस के 'स्थाई भूमि प्रबन्ध' (इस्तमरारी बंदोबस्त) था। इसके लागू होने के 40 वर्ष बाद जब एक ब्रिटिश सरकारी आयोग द्वारा इसकी समीक्षा की गई, तब उसका निष्कर्ष था कि जानबूझकर तैयार किये गये समायोजन दुर्भाग्यवश निचले वर्ग के लिए अत्यन्त दुखदाई होते हैं। इस प्रयोग के दुष्परिणाम की भयावहता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इस प्रयोग ने भारत भूमि को बुनकरों की हड्डियों से सफेद कर दिया था। किन्तु यह प्रयोग सबकी निगाह में असफल नहीं रहा।

ब्रिटिश गर्वनर जनरल ने कहा कि तमाम जरूरी मामलों में असफल रहने के बावजूद अमीर भू-स्वामियों के वर्ग को ब्रिटिश उपनिवेश का भक्त बनाने में इस्तमरारी बंदोबस्त सफल रहा।

इसी प्रकार का एक प्रयोग 1989 में ब्राजील में आजमाया गया। अमेरिकी ब्राजील नीति को एक अमेरिकी परस्त अर्थशास्त्री ने "अत्यधिक सफल" तथा "अमेरिकी सफलता की वास्तविक कहानी" करार दिया था। ब्राजीली उद्योगपतियों के लिए 1989 एक सुनहरा साल था जब मुनाफा अतीत के सभी रिकार्ड तोड़ गया था, पर मजदूरों की पहले से ही कम मजदूरी में 20 प्रतिशत की और कमी हो गई थी।

किन्तु अब जब मानव विकास की संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट ब्राजील को अल्बानिया से भी नीचे रखती है तब एक नई रूढ़ि की स्थापना प्रारम्भ हो गई है। जब मुसीबत अमीरों के दरवाजे खटखटाने लगी तब "पूँजीवाद पर आधारित विकास की वैज्ञानिक विधि" में अचानक सरकारी दखलन्दाजी और समाजवाद जैसी बुराईयाँ नजर आने लगी हैं।

कुछ इसी तर्ज पर भारत में भी एक राजनैतिक पार्टी की उदारीकरण द्वारा तबाह जनता के दुख-दर्दों का निराकरण दूसरी राजनीतिक पार्टी और भी विवेक शून्य ढंग से और बेतहाशा उदारीकरण से कर रही है। शायद मजार विध्वंस की समस्त बहादुरी के बाद भी शायरी के इतने कायल हैं कि मानते हैं–

दर्द का हद से निकल जाना, है दवा ही जाना।

(मुक्तिबोध मंच, पंतनगर)

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2000

बेबस मज़दूरों की आत्महत्याएं और कुछ जलते-चुभते सवाल

(बिगुल संवाददाता)

गाजियाबाद। "जीने के लिए अब कोई रास्ता शेष नहीं बचा है। यह दुनिया बहुत ही बेरहम है, जहां गरीबों के लिए कोई जगह नहीं है।" मरने से पहले करीब 6 पेज के सुसाइड नोट में महेन्द्र ने यह लिखा है। उसने लिखा है कि वह अपनी पत्नी व बच्चों से बहुत प्यार करता है। वह नहीं चाहता कि उसके मरने के बाद उसके बीवी-बच्चों की बेकद्री हो लिहाजा वह अपनी पत्नी व बच्चों को मारकर स्वयं आत्महत्या करने का महापाप कर रहा है।

झारखंड का रहने वाला बी.काम. की शिक्षा प्राप्त महेन्द्र दिल्ली मेहनत-मजदूरी करने आया था। महेन्द्र की पत्नी भी मजदूरी करने के लिए घर से बाहर निकली थी। वह एक रेडीमेड गारमेंट्स फैक्ट्री में एक हजार रुपये महीने की नौकरी करने लगी। महेन्द्र एक प्लास्टिक पेंट कारखाने में काम करता था और महीने का दो हजार रुपये पाता था। उन्होंने गाजियाबाद में एक छोटा सा कमरा 400 रुपए महीने के किराए पर ले लिया और चारों बच्चे स्कूल जाने लगे थे। लेकिन गरीबी और भूख उनका पीछा करती रही। आखिर में तंग आकर घनघोर निराशा में पैंतीस वर्षीय महेन्द्र ने यह भयावह फैसला ले लिया।

यह एक अकेली घटना नहीं है। सिर्फ गाजियाबाद में ही तेरह दिन में तीन ऐसे खौफनाक हादसे हुए हैं। अप्रैल के दूसरे पखवारे में इन तीन घटनाओं के अलावा कानपुर और मिर्जापुर से भी ऐसी ही घटनायें अखबारों में आई हैं। ये घटनाएं तो वे हैं जो अखबारों में आ गई, लेकिन ऐसा कितना ही कुछ समाज में हमारे आस-पास घट रहा है। विडम्बना यह है कि चे चीजें महज खबर बनकर रह जाती हैं, पढ़े-लिखे मध्यवर्ग के मानस को ये उद्वेलित नहीं करतीं। कहीं कोई सुगबुगाहट नहीं होती। मौत के चेहरे पर पड़े नकाब को खींच नहीं लिया जाता और जिन्दगी की चार सौ बीसी को सरेआम बेपर्द नहीं किया जाता।

पूंजीवादी व्यवस्था के कुरुप और घृणित चेहरे पर कितने की नकाब डाल दिये जायें, उसकी असलियत रोज़-ब-रोज उघड़कर सामने आ रही है। दुख के अथाह सागर में विलासिता की मीनारें खड़ी कर लोकतंत्र का ढोंग रचने वालों का पाखंड बेनकाब हो रहा है। अमीरों की मुनाफे की वहशियत रोज बेगुनाह गरीबों को मौत के मुंह में ढकेल रही है। भूख से हुई मौतों, पूरे परिवार का खत्म हो जाना-ऐसी घटनाओं में बहुत कम ही अखबारों में खबर बन पाती हैं। रोज कुपोषण और गरीबी से हो रही धीमी मौतों की तरफ तो ध्यान भी नहीं जाता। उन स्थितियों की तरफ ध्यान नहीं जाता जिसमें लाखों मजदूर नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं। देखा जाय तो एक आम मजदूर की जिन्दगी ही मौत से कम नहीं है।

इन हालात के बावजूद अखबारों में और अन्य बुर्जुआ मीडिया में ऐसे कलमघसीटों की कमी नहीं है जो मजदूरों को अहिंसा और सदाचार का पाठ पढ़ाते हैं। मजदूर आंदोलन के नाम से उनका दिल दहल उठता है। मजदूर की जिन्दगी और मजदूरों की मुक्ति के दर्शन का ककहरा भी इन्हें ठीक से नहीं पता, परन्तु बातें ऐसी बघारते हैं कि मानों खुदा के पास से सीधे कोई मजदूर मुक्ति का फार्मूला लेकर चले आ रहे हों। यह और बात है कि इनके इस कूड़कबाड़ फार्मूले को देखकर कचड़ा पेटी भी शरमा जाय। एक बहुत बड़े बुद्धिजीवी हैं- राजकिशोर। मजदूर वर्ग की हिंसा इनकी आंखों को खटकती है और उसे अहिंसा का उपदेश पिलाते हैं। इनके बौद्धिक मोतियाबिन्द की स्थिति यह है कि इन्हें रोज-ब-रोज तिलतिल कर मारने वाली व्यवस्था की सबसे जघन्य हिंसा नहीं दिखाई देती।

जनता से कटे बुद्धिजीवियों को लकदक शॉपिंग प्लाजा, एअरकंडीशंड बंगले तो दिखाई पड़ते हैं लेकिन उन्हें झुग्गी-झोपड़ियों की रसातल की जिन्दगी नहीं दिखाई देती। हो सकता है इन सभी को एक खास किस्म का रतौंधी रोग हो गया हो। धनपशुओं के टुकड़ों में पलने वाले लोगों और पालतू कुत्तों में यह रोग प्रायः पाया जाता है। साहबों के कुत्तों को देखिए, वे सूट-बूट वालों के सामने तो दुम हिलाते हैं, लेकिन फटे-पुराने कपड़े वालों पर भौंकते हुए टूट पड़ते हैं। "पालतू" बुद्धिजीवियों का क्या दोष? मजदूरों को देखते ही उनका रोंआ उभड़ जाता है। फिर उन्हें मजदूर कामचोर, आलसी, ज्यादा बच्चे पैदा करने वाला और झगड़ालू दिखाई देने लगता हैं। सारी समस्याओं की जड़ उन्हें नालायक मजदूर लगने लगता हैं चूंकि वे बुद्धिजीवी हैं तो उनका फैर्ज बनता है कि नालायक को लायक मजदूर बनाने के कुछ नुस्खे ईजाद करें। उसे अपनी तरह शरीफ बनायें और दुम टांगों के अन्दर डालने का नित अभ्यास करायें। "पालतू" बुद्धिजीवी पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह काम किये जा रहे हैं लेकिन समस्या जस की तस बनी हुई हैं। वे इतिहास से भी सबक नहीं लेना चाहते।

इतिहास बताता है कि बल का प्रतिकार बल से ही हो सकता है। बल प्रयोग की सत्ता को चकनाचूर कर ही मानवीय बराबरी का समाज बन सकता है। लूट के तंत्र को चलाने वाले लोगों को सदाचार का पाठ पढ़ाकर उनका हृदय परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

●

मालिक का घूँसा, पुलिस की जेब गर्म मामला रफा-दफा

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा। मामला सेक्टर-57 स्थित कम्पनी ब्रेकवेल(सी-28) का है। यह कम्पनी गाड़ियों के क्लच व ब्रेक बनाती है। घटना फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर ताराचन्द के साथ घटी। पिछले दिनों कम्पनी मालिक ने ताराचन्द को बेवजह कई घूँसे जड़ दिये। मामला पुलिस तक पहुँचा लेकिन पुलिस की जेब गर्म हो जाने कारण मामला रफा-दफा कर दिया गया।

ताराचन्द मिस्त्री है। वह मशीनें खराब होने पर मरम्मत का काम करता हे। कम्पनी में काम को दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। मिस्त्री का काम करने वालों को भी दो टीमों में बाँटा गया है। पहली टीम उस मशीन को ठीक करती है जो चलते-चलते रुक जाती है। दूसरी टीम का काम मशीनों को पहले से ठीक रखना होता है ताकि वह चलते-चलते रुक न जाये। ताराचन्द दूसरी टीम का सदस्य था। हुआ यह कि एक दिन कि पहली टीम के दो सदस्य नहीं आए। नतीजतन कई मशीनें चलते-चलते रुक गयीं। और सारा काम बन्द हो गया। इस पर एक मैनेजर ने दसरी टीम के मजदूर ताराचन्द को वह काम करने के लिए कह दिया। ताराचन्द मेहनत और लगन से उस काम को करने लगा। इतने में कम्पनी का मालिक आ गया और आते ही ताराचन्द पर बरस पड़ा, "तुम यह काम क्यों कर रहे हो? तुम्हारे हिस्से में यह काम नहीं है।" इसपर ताराचन्द ने कहा कि सर मुझे मैनेजर साहब ने इस काम पर लगाया है। लेकिन ये सभी बाते अनसुनी कर मालिक ताराचन्द पर टूट पड़ा और दनादन कई घूँसे पेट में जड़ दिये। ताराचन्द के यह पूछने पर कि सर इसमें मेरी क्या गलती है। मुझे क्यों मारा, मुझे तो मैनेजर साहब ने यहाँ लगाया है, मालिक आग बबूला हो उठा। उसने कहा, "मेरे साथ जुबान लड़ाता है।" उसने ताराचन्द के कपड़े नोच डाले और कम्पनी से बाहर कर दिया। ताराचन्द के साथ दूसरे मिस्त्रियों को भी बाहर कर दिया। इन मजदूरों ने जब पूछा कि हमें क्यों बाहर कर रहे हो तो मालिक ने कहा कि बकवास बन्द करो और हिसाब ले जाओ।

इस मामले में मजदूरों ने पुलिस का सहारा लेने की कोशिश की। पर दूसरी तरफ से मालिक ने भी पुलिस में अपना गुर्गा भेजकर यह रिपोर्ट दर्ज करायी कि मजदूरों ने मेरे साथ गाली-गलौज किया है। पुलिस वाले कारखाने पहुँचे लेकिन मालिक ने उन्हें सीधे अन्दर बुला लिया और जेब गर्म कर दी। वही हुआ जो अक्सर होता है। मामले को रफा-दफा कर दिया गया। मजदूरों को कुछ समय के लिए अन्दर ले लिया गया।

अब हालत यह है कि मालिक जबरन मजदूरों से कोरे कागज पर दस्तखत करवा रहा है। एक-एक, दो-दो करके पुराने वर्करों को निकालकर नये मजदूरों को दिहाड़ी और ठेके पर भर्ती कर रहा है।

मजदूर ताराचन्द कम्पनी के उन मजदूरों में से है जिन्हें दो महीने पहले मालिक ने यह कहकर ईनाम दिया था कि ये मजदूर अपनी इच्छा, मेहनत और लगन से काम करते हैं। उसने यह भी घोषणा थी कि भविष्य में भी जो मजदूर इसी तरह काम करेगा उसे भी अवार्ड दिया जाएगा लेकिन मालिक ने इस बार ताराचन्द को जो 'अवार्ड' दिया वह इस बात का सूचक है कि मुनाफाखोरों के लिए मजदूरों की मेहनत, ईमानदारी, लगन का कोई मोल नहीं है।

फिलहाल इस कम्पनी से मजदूरों का एक-एक, दो-दो करके निकाला जाना बाकी है। नोएडा की तमाम कम्पनियों की तरह इस कम्पनी में भी काम के घण्टों और मजदूरी के स्थिति यह है कि 12-14 घण्टे काम करने पर भी मजदूरों के हाथ में 1500-1800 रुपये से अधिक नहीं आता। किसी मजदूर के पास ई.एस.आई. कार्ड नहीं है। नतीजा यह कि अगर कोई बीमारी हो जाये तो बिना कर्ज लिए काम ही नहीं चल सकता।

कम्पनी के भीतर आलम यह है कि कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ मजदूर कुछ पल इत्मीनान से बैठकर दोपहर का खाना तक खा सकें। एक कमरा है जिसमें आधे से अधिक जगह कबाड़ से भरी हुई है। कुछ मजदूर इस गन्दगी के ढेर पर बैठकर खाना खा लेते हैं और कुछ अपनी मशीनों के पास ही बैठकर। मशीनों के पास इतनी गर्मी होती है कि मजदूरों का खून तक उबलता रहता है, माँस तक पिघलता रहता है। कई मजदूर तो मशीनों की गर्मी के कारण खून की उल्टियाँ तक कर चुके हैं।

कम्पनी में क्लच व ब्रेक जिन कच्चे मालों से बनते हैं वह पिसे हुए शीशे, लोहे, पीतल, फाइबर, प्लास्टिक के पाउडर के रूप में होता है। तेजाब का इस्तेमाल भी होता है। नतीजतन 6-7 महीने कम्पनी में काम करने के बाद ही मजदूर टी.बी. के मरीज हो जाते हैं। सुबह से शाम तक काम करते-करते मजदूरों के चेहरों पर एक इतनी मोटी काली परत चढ़ जाती है कि आइने में खुद अपनी सूरत तक नहीं पहचान पाते।

ब्रेकवेल कम्पनी का मालिक अपना बेरोकटोक राजपाट इसलिए चला रहा है क्योंकि कम्पनी के मजदूर संगठित नहीं है। और न ही नोएडा के पैमाने पर मजदूरों का कोई क्रान्तिकारी संगठन ही है जो इस बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करे। यहाँ मजदूरों के फर्जी हिमायतियों की भरमार है। जो अपनी-अपनी दुकानें सजाये 'केसों' को सुलटाते रहते हैं। चुनाव की राजनीति करने वाली राजनीतिक पार्टियों से जुड़ी यूनियनें और उनके नेता मजदूर एकता जिन्दाबाद के नारे लगाते हुए मालिकों से सौदेबाजी करना या दलाली खाना ही अपना परम धर्म समझते हैं ऐसे में मजदूर हताश-निराश हैं और किसी तरह अपनी नौकरी बचाने के फेर में ही लगे रहते हैं। लेकिन नरक से भी बदतर जिन्दगी जी रहे और मालिकों की गुलामी कर रहे मजदूर हमेशा इस हालत में ही नहीं पड़े रहेंगे। वह दिन जरूर आयेगा जब मजदूर बुलन्द आवाज में यह ऐलान करेंगे कि हम भी इन्सान हैं और अपनी गुलामी की बेड़ियों को झनझनाकर तोड़ देंगे। तब उनकी आवाज पूरी दुनिया सुनेगी।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।